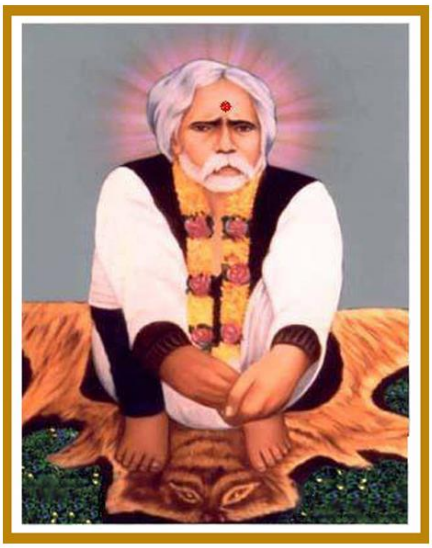

OM SHRI GURU PARAMATMANE NAMAH

# MANOHAR JIVAN DARSHAN

## SHRI SHRI 1008 SHRI MANOHAR DAS AGHORI

जनम (प्रगटीकरण) - Birth (Manifestation)
भाद्रपद शुक्ला - Bhadrapada Shukla
जलझुलनी एकादशी - Jaljulni Ekadashi
रात्रि ११ बजे पुष्य नक्षत्र में - 11 pm in the constellation Pushya
सम्वत् १९५२ (सन् 1894) - Samvat 1952 (AD 1894)

सत्यलोकवास (निर्वाण) - Satyalokwas (Nirvana)
अगहन सुदी ६ मंगलवार - Agahan Sudi 6 Tuesday
सुबह ५ बजे - 5 am
सम्वत् २०१५ (16 दिसम्बर 1958) - Samvat 2015 (16 December 1958)

WWW.AGHORI.IT

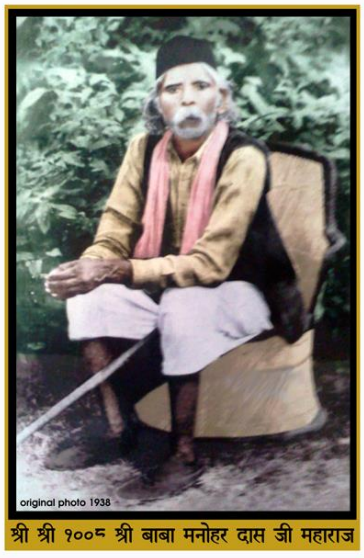

श्री श्री १००८ श्री बाबा मनोहर दास जी महाराज

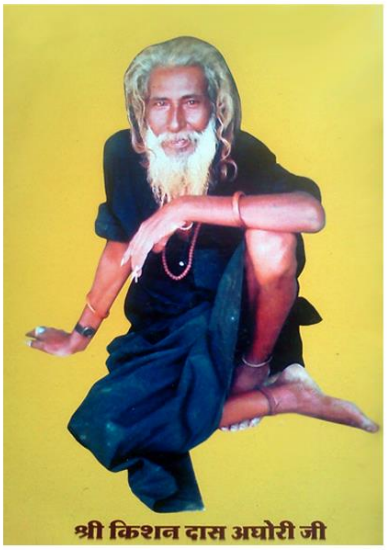
श्री किशन दास अघोरी जी

*This book is the cleaning job done on photocopies of an original book,*
*now unobtainable, recovered by Radhika Dasi Aghori.*
*Some parts of the book were not legible necessitating a restoration.*

*In memory of Baba Manohar Das Ji, Baba Kishan Das Aghori guru's.*

*With love and devotion*
*Govinda Das Aghori*

*Questo libro è il lavoro di pulizia fatto su delle fotocopie di un libro originale,*
*ormai introvabile, recuperato da Radhika Dasi Aghori.*
*Alcune parti del libro non erano ben leggibili rendendo così necessario un restauro.*

*In ricordo di Baba Manohar Das Ji guru di Baba Kishan Das Aghori.*

*Con amore e devozione*
*Govinda Das Aghori*

# अध्याय-10

*॥ ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः ॥*

*बाबा मनोहरदास जीवन-दर्शन*

## अलख पुरुषमूर्ति

हमारे गुरुदेव बाबा श्री मनोहरदास जी महाराज के मुख से प्रायः जो वाणियाँ प्रकट होती रहती थीं, सनमें प्रमुख थीं।

*"अलख पुरुष मूर्ति",*

*अलख पुरुष अविनाशी, सच्चिदानन्द,*

*घट-घट के वासी.... ।"*

ॐ गुरुदेव ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप भगवन् नमोनमः। आदि-आदि। अलख शब्द का सामान्य अर्थ है जिसे चर्म चक्षुओं से देखा न जा सके [अ = नहीं, लख = देखना] इस प्रकार जो तत्व दिखाई न दे वह अलख कहलाता है। दिखाई देने के लिए आवश्यक है कि पदार्थ का कोई निश्चित आकार, रूप, रंग आदि हो, जेसको देखकर उसका वर्णन किया जा सकें लेकिन "अलख–को कोई कैसे लख सकता है। क्योंकि उसे किसी प्रकार देखा जा सकता हो, तो फिर वह अलख हो ही नहीं सकता। जो मन-वाणी का भी विषय नहीं उसे ही अलख या ब्रह्म कहा जाता है।

*"यतो वाचो निवर्तन्ते*
*अप्राप्य मनसा सह"* (तैत्तिरीय उ. 2/8)

"मन के सहित वाणी जिसे न पाकर वापस लौट आती है।" वह तत्व "ब्रह्म" नाम से जाना जाता है। उसके बारे में अभी तक किसी ने निश्चित वर्णन नहीं किया है क्योंकि जिस तक मन एवं वाणी की पहुँच ही नहीं, फिर किस माध्यम से उसके बारे में जानकारी हो सकती है। श्रुति का उपर्युक्त मंत्र यह सिद्ध करता है कि वह ब्रह्म "अलख" है उसे मन और वाणी का विषय बनाया ही नहीं जा सकता। वेदों ने भी प्रकारांतर से उस तत्व का वर्णन अनेक प्रकार से किया है, लेकिन नेति [ऐसा नहीं) (नेती) ऐसा भी नहीं] कह कर सम्पूर्ण रूप से उसका वर्णन करने में असमर्थता ही प्रकट की। अतः "ईश्वर" मूलतः अलख अनिर्वचनीय) तत्व ही है। जिस प्रकार ब्रह्म "अलख" है ठीक उसी प्रकार उसका अंशी जीव भी अलख ही है क्योंकि उसको भी आज तक किसी ने नहीं देखा। शरीरों को ही शरीरों से देखा जा रहा है अर्थात् इन्द्रियों मन एवं बुद्धि के द्वारा हम बाहरी (बाह्य) जड़ संसार को ही निरख-परख सकने में समर्थ हैं उस ब्रह्म के चेतन अंश जीव को भी इन्द्रियों एवं वाणी का विषय नहीं बनाया जा सकता है–

*दुनहु तात यह अकय कहानी,*

*रामुझत बनइ न नाइ बखानी॥*

*ईश्वर अंस जीव अविनाशी।*

*वेतन, अमल सहज सुख रासी॥ (मानस उ. का)*

इस प्रकर ''अलखन तत्व में जीव और ब्रह्म जो वस्तुतः न्यारे न होकर एक ही तत्व हैं, आते हैं। उनका स्वरूप वर्णन किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं है। फिर भी कोइं उस''ब्रह्म'' तत्व जिसका स्वरूप संतों की भाषा में ''अलख'' है, वर्णन करने का प्रयास करें तो समझों वह उस गूढ-तत्व रहस्य से परिचित नहीं। क्यों कि जिसका न नम है न रुप है उसका वर्णन किस प्रकार से किया जा सकता है। वह अनुभव के द्वरा जाना तो जा सकता है लेकिन मन वाणी का विषय न होने के कारण वह अवर्णनीय है, वह तत्व–

*अज अद्वैत अगुन हृदयेसा।*

*अकल अनीह अनाम अरुपा॥*

*अनुभव गम्य अखण्ड अनूपा।*

*नन गोतीत अमल अविनासी॥*

*निर्विकार निरवधि सुखरासी (मानस उ. का.)*

अर्थात–वह ब्रह्म तत्व अजन्मा है, अद्वैत है अर्थात् उसके अतरिक्त दूसरा कोई पवर्य नहीं है, वह निर्गुण रूप है, हृदय का स्वामी है अर्थात जीवन के हृदय में ईश्वर रूप में सदा विवस करने वाला है। उसे कोई बुद्धि के द्वारा माप नहीं सकता इसलिए वह अकल है, वह इच्छा रहित (अनीह) है, उसका कोई नाम रूप नहीं है वह (ब्रह्म अनुभव से जानने योग्य अखण्ड और (अनूप) उपमा रहित है। वह मन और इन्द्रियों से पर, निर्मल तथा विनाश रहित है निर्विकार, सीमा रहित (असीम एवं सुख की राशि है! उपराक्त वर्णन उसी अलख पुरुष मूर्ति का है, जिसका दोष बाबा महाराज अपनी मस्ती में किया करते थे, वेद में उसके अनिर्वचनी तत्व को कुछ लसणों के द्वारा निर्देश मात्र किया है, उसी का अंश यह जीव है जो स्वयं भी कभी नहीं देखा क्या। तत्व ज्ञाता अपने शिष्यों को उस अलख तत्व का लक्षणों द्वारा बोध कराके उन्हें उस ब्रह्म के साथ एकता तदाकारता प्राप्त करने के लिए ''तत्वमसि" महा वाक्यों से यह समझाते हैं कि जिस प्रकार समुद्र से उसकी तरंग अलग नहीं ठीक उसी प्रकार जीव और ब्रह्म भी दो अलग-अलग तत्व न होकर एवं ही सर्व की सहस्त्रों किरणें हैं। ''तत्वमसि'' महा वाक्य का सामान्य अर्थ है तत् - त्वम - असि अर्थात् तत् (वह) त्वम् (तूही (असि) है, वह ब्रह्म तुझसे अलग नहीं वरन तू स्वयं ही ब्रह्म है–

*सो तें ताहि तोहि नहिं भेदा।*

*बारि बीचि इब गावहिं वेदा॥*

अर्थात् वेद ऐसा कहते हैं कि ''तू वही है (तत्वमसि) जल और जल की लहर की भाँति उस (ब्रह्म) में और तुम (जीव) में कोई भेद नहीं है।

लेकिन यह अद्वैत निष्ठा तब तक सिद्ध नहीं होती जब तक की यह जीव अविद्या के कारण अपने को देह स्वरूप मानकर प्रकृतिस्थ हो रहा है। प्रकितिस्थ होने के कारण ही इससे प्रकृति (शरीर) द्वारा होने वाले कार्यों का कर्ता स्वयं को मान लिया है इस न्याय से कर्ता एवं उन कर्मों का भोक्ता वन कर ऊंची-नीची योनियों में यह जन्म जन्मान्तर से भटक रहा है। वास्तव में यह कहानी कहने एवं सुनने की नहीं

दोहा *भीखा बात अगम्य की, कहन सुनन की नांय।*

*जो जानहिं सो न कहै, कहै सो जानें नांय॥*

इस प्रकार उस ''अलख'' पुरुष को किसी ने नहीं लखा अपने-अपने अनुभवों द्वारा सभी महा पुरुषों ने उसका स्वयं (आत्मा) के द्वारा जैसा अनुभव किया है। अपनी शक्ति सामर्थ्यानुसार लक्षणों के माध्यम से उस ''अलख'' पुरुष की झलक मात्र देह है। हमारे गुरुदेव उस परम तत्व में लीन ब्रह्म निष्ठा महात्मा थे। अपनी अटपटी और अनौखी वाणियों का संकेत मात्र दिया है। इसके लिए हम उनके द्वारा बोली जाने वाली ''गुरुवन्दना'' पर विचार करते हैं–

*''ॐ गुरुदेव-ब्रह्म, सच्चिदानन्द स्वरूप,*

*आनन्द–दाता कल्याणकारी,*

*अग्नि में ज्योति में, प्रकाश में,*

*अजर अमर अविनाशी।*

*घट-घट के वासी॥*

*निराकार निर्विकार,*

*सर्वाधार अन्तर्यामी,*

*अलख निरंजन, भवभय - भंजन। संकट मोचन बनवारी, देवेश्वर योगेश्वर*

*प्राणेश्वर परमेश्वर। ईश्वर॥*

*ॐ गुरुदेव ब्रह्म, सच्चिदानन्द आनन्द कंद भगवन् नमो नमः॥''*

हुजूर बाबा साहब ने इस गुरु वन्दना द्वारा उस ''अलख'' की कुछ झलक

दिखलाई है, प्रार्थना में ब्रह्म रूपी गुरुदेव की कुछ ावशषताआ का झलक मात्र दकर उनकी महिमा का बखान किया गया है। ब्रह्म तत्व को दो प्रकार के विशेषणों द्वारा निर्देशित किया गया है 1/ विधेय विशेषण 2/ निषेध्य विशेषण ब्रह्म के विधेय विशेषण– सच्चिदानन्द, ब्रह्म, स्वयं प्रकाश कूटस्थ, साक्षी, दृष्टा, उपदृष्टा तथा एक (ॐ कार स्वरूप) इन विधेय विशेषणों के माध्यम से हम उस अलख की कुछ झलक पाने के लिए इन विशेषणों की संक्षिप्त व्याख्या करते हैं।

## सच्चिदानन्द स्वरूप

सत्–उस अलख तत्व की ज्ञान से या अन्य किसी क्रिया द्वारा निवृति सम्भव नहीं। अतः वह सत नाम से जाना जाता है वह ब्रह्म तत्व जागृत, स्वप्न एवं सुषुप्ति तथा बाल्य, यौवन एवं वृद्ध, भूत, भविष्य तथा वर्तमान रूप से इन सभी अवस्थाओं का प्रकाशक रूप से विद्यमान है अतः वह सत कहा जाता है। ये सभी अवस्थाएं परिवर्तनशील हैं, ये अवस्थाएँ उसको नहीं जानती वरन् वही (अलख) इन सभी को जानने वाला एवं इनका प्रकाशक भी है। वह ब्रह्म तत्व जिसे सत् कहा गया है–तीनों कालों में विद्यमान रहने के कारण कहा जाता है–तीनों कालों की उसकी सत्ता इस प्रकार है–

(1) जागृत अवस्था, स्वप्नावस्था एवं सुषुप्ति अवस्था में भी वह है।

(2) प्रातः, मध्याह एवं सायं में वही सत्य है।

(3) दिवस रात्रि एवं पक्ष में वह है।

(4) मास, ऋतु एवं वर्ष में वही विद्यमान है।

(5) बाल्य, यौवन एवं वृद्धावस्थाओं में वह है।

(6) पूर्व देह, वर्तजान देह एवं भावी देहों में वह "है"।

(7) भूत, भविष्य एवं वर्तमान में वह ब्रह्म विद्यमान है।

ये सभी काल एवं अवस्थाएँ "लयावधि'' (आने जाने वाली) है लेकिन वह (अलख) ब्रह्म तत्व हमेशा एक रस विद्यमान रहता है। अतः वह ''सत्'' है, ये सभी अवरथाएं उसको नहीं जानती वह सव अवस्थाओं को जानता है। अवस्थाएँ उत्पन्न और समाप्त हो रही हैं लेकिन वह ज्यों का त्यों बना रहता है। अतः वह ब्रह्म (अलख) सत्य है। ये सभी अवस्थाएं एक जैसी नहीं रहती उदाहरण के लिए बाल्यावस्था के बाद यौवन एवं यौवनावस्था के बाद वृद्धावस्था क्रम-क्रम से आती जाती रहती हैं। इन सब के साथ उत्पत्ति विनाश लगा हुआ है। यौवन अवस्था से पूर्ववत् बाल्यावस्था का नाश हो चुका होता है, वृद्धावस्था आने पर यौवन का नाश हो जाता है लेकिन ''वह'' इन तीनों अवस्थाओं में एक रस रहता है। अतः वह सर्व अवस्थाओं का साक्षी ''सत्य'' है। वह ब्रह्म इन सभी अवस्थाओं को जानता है और

ये सभी अवस्थाएँ जब होने के कारण उसे नहीं जानती। सिद्धान्त यह है कि जो जिसे जानता है वह उससे अलग होता है। अतः इन सभी अवस्थाओं में उसी अलख पुरुष को ''झलख'' दिखाई पड़ती है। अतः वह सबसे व्यारा एवं ''सत्य'' स्वरूप है।

## चित-स्वरूप

''ब्रह्म'' का बोधक दूसरा विधेय विशेष ''चित्त'' अर्थात प्रकाशक या सब को जानने वाला है।

चित्त–तीनों कालों में जो सबको जानता है, सभी अवस्थाओं का जो साक्षी (देखने वाला) है वह ''चित्'' नाम से जाना जाता है। उस से भिन्न नाम, रूप, वस्तु सहित तीनों काल जड़ हैं, आदि अन्त वाले हैं, वह सभी अवस्थाओं को जानता है अतः चित्त कहा जाता है सभी अवस्थाएं जड़ होने के कारण उसे नहीं जानती, वह सभी को जानता है। उस अलख की झलक सभी अवस्थाओं से स्पष्ट देखी जा सकती है। अतः वह सर्वप्रकाश ''चित्त'' नाम से जाना और समझा जाता है। वह ब्रह्म सत्य स्वयं प्रकाश है उसका प्रकाश (ज्ञान) कभी लुप्त नहीं होता संसार की जितनी भी प्रकाशक वस्तुएँ हैं वे सब उसी के प्रकाश से प्रकाशित हो रही है वे सब जड़ एवं लुप्त प्रकाश है। सूर्य, चन्द्रमा एवं अग्नि उसी स्वयं प्रकाश से प्रकाशित हो रहे हैं–

*यदादित्यगंत तेजो जगद्भासयते अखिलम्।*

*यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धिमामकम्॥* (गीता. 15/12)

अर्थात् सूर्य में आया हुआ जो तेज सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित करता है, और जो तेज चन्द्रमा में है तथा जो तेज अग्नि में है, उस तेज को मेरा ही जान।''

श्रीमद्भगवद्गीता का उपर्युक्त श्लोक इस वात को पूर्ण सिद्ध कर देता है कि वह (अलख) अपने प्रकाश द्वारा सूर्य, चन्द्रमा एवं अग्नि के माध्यम से अपनी झलक दिखला रहा है।

हमारे गुरुदेव की वन्दना के पदों में उसका स्पष्ट निदेश मिलता है कि वह (अलख पुरुष) अग्नि में ज्योति में तथा घट-घट में अपनी झलक दिखला रहा है। अतः वह ''चित प्रकाशस्वरूप'' है।

## आनन्द स्वरूप

परम् प्रीति का जो विषय हो उसे ''आनन्द'' कहते हैं, वह तीनों कालों में परम प्रीति का विषय होने के कारण आनन्द स्वरूप कहा गया है। वह अलख पुरुष मूर्ति ''ब्रह्म'' देह, इन्द्रियाँ, प्राण, धन, पुत्र आदि सबसे प्यारा है और ये सब आत्मा के लिए ही प्यारे होते हैं आत्मा (ब्रह्म) अपने स्वयं के लिए प्यारा होता है, वह सबसे प्यारा और आनन्द स्वरूप है, वेदों, शास्त्रों में पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध वह (अलख पुरुष) तीनों कालों में सबसे अधिक प्रिय है आनन्द स्वरूप है। उससे

अतिरिक्त समस्त नाम रूप वस्तु सजित आदि अन्त वाले होने के कारण दुःख रूप है अतः ''ब्रह्म'' को आनन्दरूप से जाना जाता है वह ''आनन्दधन'' अर्थात् अपनी सत्ता मात्र से जीवों को सुःख प्रदान करता है संसार के समस्त प्राणी पदार्थों में जो क्षणिक आनन्द विद्यमान है वह भी उसी (अलख) की झलक मात्र है, उनमें स्थाई आनन्द न होकर क्षणिक आनन्द है जो वस्तु, व्यक्ति एवं पदार्थ स्वयं आदि अन्त वाले हैं उनमें स्थाई आनन्द कैसे हो सकता है। ''वह'' अलख पुरुष अविनाशी है अतः वह स्वयं आनन्द स्वरूप ही है। आत्मा (ब्रह्म) की सर्वप्रियता के लिए कुछ उदाहरण, निवेदन करता हूँ जिनसे ''ब्रह्म'' की सबसे अधिक प्रियता सिद्ध होती है–

''आत्मा परमप्रिय है–जैसे पुत्र के मित्र में जो प्रीति है वह पुत्र के लिए ही होती है, पुत्र में जो प्रीति है वह उसके मित्र में नहीं ठीक इसी प्रकार, धन एवं पुत्रादि में जो प्रीति है वह आत्मा के लिए ही होती है। परन्तु आत्मा में जो प्रीति है वह धन एवं पुत्र से अधिक है। अतः ''आत्मा'' परमप्रिय है। संसार में प्रायः देखा जाता है कि धन को सवसे अधिक प्रिय माना जाता है क्योंकि इसकी प्राप्ति हेतु मनुष्य देश छोड़ विदेश चला जाता है, अनेक प्रकार की खतरनाक परिस्थितियों में पड़कर भी धन कमाने का प्रयास करता है, यहाँ तक कि अनेक प्रकार के नीच कर्म करके भी धन कमाने के प्रयास किये जाते हैं। धन के लिए मनुष्य आकाश तथा गहरे समुद्रों तक में प्रवेश करने से नहीं हिचकता, अर्ज करने का तात्पर्य यह है कि ''धन'' की संसार में प्रियता सर्व विदित है।

धन से पुत्र प्यारा है–उपर्युक्त उदाहरण में धन की प्रियता को सिद्धकर अब यहाँ यह स्पष्ट किया जाता है कि धन पुत्र से ज्यादा प्रिय नहीं क्योंकि किसी कारणवश पुत्र के कारागार में वन्द होने पर धन का त्याग करके पुत्र को छुड़ाया जाता है अथवा पुत्र के अस्वस्थ होने पर धन का त्याग कर उसे स्वास्थ्य लाभ दिलाया जाता है। अतः धन की अपेक्षा पुत्र की प्रियता सिद्ध होती है। पुत्र की अपेक्षा अपना शरीर प्रिय होता है क्योंकि संसार में देखा जाता है कि जव शरीर पर आपत्ति आती है दुर्भिक्ष आदि के समय पुत्र को बेचकर प्राणों (शरीर की) रक्षा की जाती है। भूखी सर्पणी, भूखी कूकरी, अपने बच्चों को खा डालती है। अतः यह सिद्ध हुआ कि शरीर की अपेक्षा पुत्र प्रिय नहीं कामेन्द्रियों की अपेक्षा ज्ञानेन्द्रियों की प्रियता। देखा जाता है कि ननुष्य को अपनी कर्मेन्द्रियों की अपेक्षा ज्ञानेन्द्रियाँ अधिक प्रिय होती हैं। किसी दण्ड स्वरूप यह कहा जाये कि तुम अपनी एक आंख फुडवाना चाहते हो या एक हाथ? तो हमारा उत्तर होगा कि आँख के स्थान पर हाथ ही काट दो, इससे यह बात सिद्ध हुई कि मनुष्य को कर्मेन्द्रियों से ज्ञानेन्द्रिय प्रिय होती हैं।

ज्ञानेंन्द्रियों की अपेक्षा प्राणप्रिय–संसार व्यवहार के अवलोकन से यह सिद्ध होता है कि मनुष्य को धन, पुत्र, ज्ञानेंन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों की अपेक्षा प्राण अधिक प्यारे होते हैं, फाँसी के स्थान पर यदि एक आँख नाक या कान आदि ज्ञानेन्द्रियों के नष्ट करने का विकल्प हो तो हम इनका त्याग करके प्राणों की रक्षा करते हैं। अतः

धन, पुत्र इन्द्रियों की अपेक्षा प्राणों की प्रियता सिद्ध होती है, लेकिन जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, आत्मा सर्व प्रिय है देखा जाता है कि पुरुष जब भयंकर पीड़ा एवं व्याधि को सहन करने में असमर्थ हो जाता है तो कहता है कि अब तो प्राण निकले तभी सुखी हुँगा। उपर्युक्त समस्त विवरण से यही,सिद्ध होता है कि आत्मा (ब्रह्म) सर्वाधिक प्रिय है। अतः वह आनन्द स्वरूप है। अलख पुरुषमूर्ति (ब्रह्म) के सच्चिदानन्द विधेय विशेषण की व्याख्या पूर्ण करने के पश्चात् उसके कुछ अन्य विधेय विशेषगों का संक्षिप्त विवरण जान लेना साधकों एवं पाठकों के लिए उस अलख झलक पाने के लिए आवश्यक है, यह सम्पूर्ण विशेषण उस अनिवर्चनीय तत्व अलख पुरुष की झलक प्रस्तुत करते हैं–

ब्रह्म–ब्रह्म शब्द का अर्थ है व्यापक जिसका देश से अन्त नहीं अर्थात् जो सब स्थानों पर समान रूप से बर्फ में जल के सदृश व्यापक हो वह ब्रह्म है। जिसका देश से अन्त होता है उसका काल से भी अन्त होता है, यह नियम (सिद्धान्त) है। संसार के समस्त प्राणी पदार्थ देश काल से आदि अन्त वाले हैं अर्थात् जो प्राणी पदार्थ एक देश विशेप में है वह एक काल विशेष में भी है। उदाहरण के लिए हमारा शरीर इस समय एक निश्चित स्थान (देश) विशेष में है अन्य देशों (स्थानों में नहीं उसी प्रकार वह वर्तमान काल में हैं भविष्य में नहीं रहेगा। अतः जो प्राणी पदार्थ एक देश एवं काल विशेप में होते हैं, उन्हें अनित्य कहते हैं। आत्मा (ब्रह्म) सब देश एवं सब कालों में विद्यमान होने के कारण नित्य है। अतः ब्रह्म (व्यापक पद से जाना जाता है, आत्मा को स्वयं प्रकाश भी कहा जाता है। जो दीपक और सूर्य की भाँति अपने आपको प्रकाशित होने में किसी दूसरे की अपेक्षा नहीं करता तथा आप ही सबका प्रकाशक होता है वह स्वयं प्रकाश (अलख पुरुष) ब्रह्म सबका प्रकाशक है। अतः उसे स्वयं प्रकाश विशेषण से जाना जाता है। उसी के प्रकाश से सूर्य चन्द्र तथा अग्नि प्रकाशित है। सूर्य, चन्द्र अग्नि, स्वयं प्रकाशित न होकर उस अलख की झलक मात्र से प्रकाशित होकर स्थित है।

कूटस्थ–वह ब्रह्म तत्व ज्यों का ज्यों रहने वाला तथा अविकारी है। कूटस्थ शब्द लोहार के उस मोटे लोहखण्ड को भी कहते हैं, जिस पर पीटकर वह विभिन्न आकार प्रकारों की वस्तुएँ बनाता है। लेकिन उसका ऐरन (लोहे का पिण्ड) वैसा का वैसा ही रहता है। ब्रह्म के विशेषणों में कूटस्थ भी है। साक्षी–लोक व्यवहार में जो उदासीन (रागद्वेष रहित) और अति समीपवर्ती तथा चेतन हो उसे साक्षी कहते हैं वह (अलख पुरुष) ब्रह्म देहादिकों से उदासीन है। अतः वह सर्वसाक्षी कहा जाता हैं वह सब को जानने वाला है दृष्टा-सव अवस्थाओं (जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति, बाल्य, यौवन, वृद्ध, भूत,भविष्य एवं वर्तमान) में सब दृश्यों (जड़ वर्ग) का जानने वाला है। अतः दृष्टा कहा जाता है। उपदृष्टा–उसको एक दृष्टान्त के माध्यम से इस प्रकार समझा जा सकता है हमारा स्थूल देह मानो एक यज्ञशाला है, इसमें पाँच ज्ञान्द्रियाँ पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा प्राण ये पन्द्रहों ऋत्विज (हवन कर्ता) हैं। सोलहवाँ मन रूप

(चिदामास) यजमान है। सत्रहवीं यजमान की पत्नी रूप बुद्धि है। ये सब अपने-अपने विषयों को ग्रहण करने रूपी यज्ञ करते हैं। इनके इस यज्ञ कर्म अर्थात् क्रिया व्यवहार को अति समीप से देखने वाला (आत्मा) उपदृष्टा) कहलाता है।

एक - उस अलख पुरुष (ब्रह्म) का सजातीय अर्थात् उसी जाति वाला अन्य कोई नहीं है। अर्थात् उस जैसा वही एक है और विजातीय संसार मिथ्या है झलक मात्र है। अतः वह एक है। इस प्रकार ब्रह्म (अलख) को कुछ विशेषणों द्वारा जाना गया ये सव उसके विधेय विशेषण हुए अब कुछ निषेध्य विशेषणों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है–

आत्मा के प्रमुख निषेध्य विशेषण–हमारे गुरुदेव ने अपनी गुरु वन्दना में उस ब्रह्म के निषेध्य विशेषणों का प्रयोग इस प्रकार किया है। निराकार, निर्विकार, अजर, अमर, अविनाशी तथा अलख, निरंजन, इनके अतिरिक्त मुख्य निषेध्य विशेषण जो अनेक शास्त्रों पुराणों में उस ब्रह्म के लक्षणों को प्रकट करने हेतु प्रयुक्त हुए हैं–

*अनन्त, अखण्ड असंग अद्वितीय, अजन्मा,*

*निर्विकार, निराकांर, अव्यक्त, अव्यय अक्षर।*

इस प्रकार निषेध्य मुख से उसका वर्णन किया गया संक्षिप्त में इन व्रिशेषणों में अर्थमात्र प्रस्तुत है। अनन्त जो देश और काल की दृष्टि से अन्त हीन है तथा सवका अधिष्ठान (आश्रय) रूप है जो सर्वरूप है, उसे अनन्त कहा जाता है।

अखण्ड–जीव ईश्वर–भेद, जीवों का परस्पर भेद चेतन व जड़ भेद, जड़ ईश्वर भेद जड़-जड़ का भेद, वह ब्रह्म इन पाँचों भेदों से रहित है अतः उसे अभेद (अखण्ड) कहा जाता है। असंग–संग, सम्बन्ध को कहा जाता है यह सम्बन्ध तीन प्रकार का होता है (1) सजातीय (2) विजातीय (3) स्वागत उस (अलख पुरुष) आत्मा का कोई संग नहीं। अतः असंग है। अद्वैत–द्वैत प्रपंच ''झलक'' मात्र है मिथ्या है, आत्मा (ब्रह्म) के अतिरिक्त कुछ नही जो है, सो ब्रह्म ही है। अतः वह अद्वैत है।

अजन्माः जन्म सिर्फ स्थूल देह का धर्म है सूक्ष्म का नहीं। अतः (ब्रह्म) (अलख पुरुष) मूर्ति का जन्म लेना सम्भव ही नहीं वह अजन्मा तत्व है।

निर्विकार–विकार जड़ वस्तु में होते हैं, जड़ पदार्थों में पाये जाने वाले विकार निम्नलिखित हैं–

(1) जन्म–गर्भ से बाहर आने की पूर्वावस्था।

(2) अस्तिपना–(प्रकटता) पैदा होना (लड़की है या लड़का)

(3) वृद्धि–बालक अवस्था।

(4) विपरिणाम-यौवनवस्था की प्रप्ति

(5) अन्वय-जीर्ण बूय हो जाना।

(6) नाश-नष्ट हो जाना, मरण को प्रप्त हना।

ये षट्टिकार उस अलख पुरुष (ब्रह्म) नें नहीं ये जड़ ''दह'' के धर्म हैं। अत्मा देह एवं जसके विकारों का ज्ञान है। अतः वह निरिंकार एक रस रहने दाल है। जन्मन, अस्विपना वृद्धि विपरिणाम, अपक्षय एवं नश देह के ही धर्म है। निराकार-आकार प्रयः चार प्रकार के होते हैं।

स्थूल सूक्ष्म लम्ब तथा छोटा। (आत्मा) बह्म इनियों तथा मन का अदेषय है। अतः वह जड़ व स्थूल नहीं, आत्मा व्याप्क हे। उतः सूक्ष्म (अणु) नहीं वह बह्म (अलख) सर्वत्र के काल तथा सभी वस्तुओ में प्रोत-प्रोत है अतः तम्ब व सेट नहीं इस प्रकार आत्मा न कोई आकार नहीं वह निराकर निरवयद है

## अक्षर

जिसका क्षरण (नश) न हो उसको अबिनासं अमृत तथा अक्षर कहर है उपर्युक्त विवरण मैं ब्रह्म य उस अलख पुरुष मूर्ति का विधेय एवं निषेध्य विशेषण का उल्लेख किय गय है। विशेष उल्लेखनीय तत्व यह है के उपर्युक्त विशेषण को उस ब्रह्म के गुण नहीं मानना चाहिये सामान्य लक्षणें के मानन से उस अलख की झलक मात्र मानन चाहिदे यदि सच्चिदानन्द आदे उस अलख पुरुष के गुण होते तो उससे भिन्न सिद्ध होते। इन विशेषणों के मानन से उस ''अलख पुरुष मूर्ति'' के स्वरूप की झलक मात्र मिलती है। अतः ये उसके स्वरुप बोधक हैं। ''अलख पुरुष मूर्ति'' की बन्दना द्वरा उस अलख की कुट झलक संसारी लोगों को देते हुए हुजूर कहा करते से कि गुरुन का ज्ञान न्यारा है तू समझता नहीं मेरे भट''। वास्ता में वह तत्व लो सर्वव्यापी है प्रत्येक कप-कप ने उसी की झलक दिखई देती है वर्णन का विषय नहीं क्योंकि वर्णन तो एक केशय तत्व का ही सम्भव होता है। असीम एवं अलख का वर्णन कैस है, और कौन कर रकत है। हाँ गुरुदेव स्वरुप ब्रह्म ने गाँवों कर कृप करते स्वयं ही उसको विवेक मत्र में इलक मात्र दिखला वे है।

यह सम्पूर्ण जगत दृश्य और जड़ है वह''अलख पुरुष मूर्ति'' चेतन और इस दृश्य रुप संसर का दृष्टा है। वह ब्रह्मा विष्णु एवं शिव क भी नाच नचाते वला है। वे भी उस ''अलख पुरुष''को पूर्णत नहीं जानते मत्र उसकी ''झलक'' से अपना कार्य करते रहते हैं। उसी की झलक (शक्ति) से विष्णु पालन, ब्रह्मा, उत्पत्ति एवं शिव उसी अलख-झलक से संहार कार्य करते है। लेकिन जिस परम प्रेमी के तप न्यास और सर्म्पण (भक्ति) भाव से वे प्रसन्न हो जाते हैं उसे उपनी समक ''झलक'' के भी दर्शन करा देते हैं उसकी समक झलक पावे का परिणम वह होता है कि वह

जीव भी उन्हीं अलख पुरुष लीन हो जाता है।

*सोई जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहिं तुम्हइ होई जाई॥*

*तुम्हरिहि कृपा तुम्हहि रघुनंद। जानहिं भगत-भगत उर चंदन॥*

*चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत विकार जान अधिकारी॥*

**(मानस आयो. का.)**

उपर्युक्त वचन श्री बाल्मीकि जी के हैं इनके माध्यम से वे कह रहे हैं कि हुजूर जिसको आप अपने अलख रूप का दर्शन कराना चाहते हैं वही तुम्हारे उस रूप को जान सकता है और उस रूप को जानने का फल यह होता है कि वह जीव तुम्हारा स्वरूप (ब्रह्मस्वरूप) ही हो जाता है आपके सच्चिदानंद विग्रह को समस्त विकारों से रहित कोई योग्य अधिकारी ही जान सकता है।

हमारे ''बाबा श्री मनोहरदास जी महाराज ने कठोर तप एवं साधना द्वारा अपने समस्त विकारों को समाप्त कर दिया था, वे सर्वभाव से उस ब्रह्मरूप गुरुदेव की शरणागति प्राप्त महात्मा थे। अतः उस अलख की झलक प्राप्त करने के पूर्ण अधिकारी थे। उन्होंने अपने क्षुद्र अहं को समाप्त कर ब्रह्म की एकता का अनुभव किया हुआ था। श्रुति द्वारा निर्देशित परम लक्ष्य अहंब्रह्मस्मि'' (सोहं) को वह प्राप्त कर स्थित थे। अपने अमृत वचनों से सम्पूर्ण जगत एवं अपने भक्तों अनुयायियों को, उस अलख पुरुष मूर्ति की झलक'' दिखलाने हेतु ब्रह्मवाचक नामों का उपदेश करते थे।

*''ॐ अखैनाम, अभयनाम*

*अजर नाम, अमर नाम*

*सत्यनाम, सामर्थ्य नाम,*

*ॐ नाम-सोहं नाम ।*

इन सात नामों द्वारा आप उस अलख पुरुषमूर्ति की झलक दिखलाया करते थे। इन सात नामों के अर्थों में उस ब्रह्म को दिखलाया करते थे। इन सात नामों के अर्थों में उस ब्रह्म को स्वरूप की झलक मिलती है। अपनी तुच्छ बुद्धि से इन ब्रह्म वाची नामों की संक्षिप्त व्याख्या प्रस्तुत करता है–

ॐ आखैनाम का तात्पर्य है कि वह ॐ जिसे वेद प्रणम एवं अक्षर-ब्रह्म या नाद ब्रह्म के नाम से कहता है, वह सर्वथा या अक्षर है, उसका क्षरण तीनों कालों में नहीं होता वह जैसा है वैसा ही बना रहता है, सारे चराचर जगत का वह एक मात्र कारण है, उसी को झलक से सृष्टि निर्माण, उसका पालन एवं संहार होता है। लेकिन उसके एक, अणुमात्र का क्षरण इस कार्य में नहीं होता अतः वह अक्षर ब्रह्म,

हुजूर के अखैनाम द्वारा जाना जाता है।

## अभयनाम

संसार में जो भी उस अलख पुरुष की सच्चे हृदय से शरणागति होता है वह जन्मरण एवं समस्त भयों से मुक्त होकर उस अभय पद को प्राप्त हो जाता है उसे भवभय हरणम'' नाम से वेदों एवं स्तुतियों ने गाया है। वह काल का भी महाकाल है। उससे भय भी भय खाता है। अतः वह अभयनाम से जाना जाता है।

अजर नाम–''जरा'' कहते हैं बुढापे को, जीर्णता को, कमजोरी को उसका जव जन्म ही नहीं होता फिर उसमें ये अन्य विकार हो ही कहाँ सकते हैं? वह जन्म यौवन वृद्धावस्था से हीन सदा एक रस बहने वाला है, दह निर्विकारी है। अतः उसका अजर नाम है।

अमरनाम–जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि वह अलखपुरुष मूर्ति अजन्मा है अविकारी है, संसार के अन्य प्राणी–पदार्थो की भाँति न उसका जन्म होता है और ना ही वह कभी मरता है, वह स्वयं भी अमरपद को पा लेता है। अतः वह सदा अजर-अमर अविनाशी है।

सतनाम–पूर्व में सच्चिदानन्द पद की व्याख्या में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि जो तत्व तीनों कालों में समस्त अवस्थाओं का प्रकाशक हो तथा उमेशा एकरस विद्यमान रहता हो वह सत्य'' है। उसका कभी अभाव नहीं पाथा जाता। सब जगत निरंतर नाश की ओर बढ़ रहा है तथा परिवर्तनशील है। उसकी समस्त अवस्थाओं में क्रम-क्रम से परिवर्तन होते रहते हैं। अन्त में वह नाश को प्राप्त हो जाता है लेकिन वह ''अलख पुरुष मूर्ति'' सभी कालों अवस्थाओं और प्राणियों एवं पदार्थों में वर्तमान के सदृश्य सदैव विद्यमान रहता है। अतः वह सत्य है और वह जगत मिथ्या है क्योंकि पहले नहीं था अब है, भविष्य में भी नहीं रहेगा। यहाँ पाठ को एक विशेष महत्त्वपूर्ण तथ्य निवेदन है कि प्रकृति एवं पुरुष दोनों ही अनादि हैं, संसार के विभिन्न प्राणियों के शरीर एवं समस्त पंच भौतिक रचना को ही असत्य एवं मिथ्या वर्णित किया गया है। मूल प्रकृति तो भगवान का ही स्वरूप है। अतः वह सत्य ही है। उदाहरण के लिए स्वर्ण और उससे बनने वाले अनन्त आकृति के आभूषण, स्वर्ण मूल तत्व है, लेकिन आभूषण मिथ्या कल्पना मात्र है। वे आदि अन्त वाले हैं। अतः स्वर्ण स्वरुप ब्रह्म सत्य है आकृति रूप समस्त नाम रूपात्मक चराचर जगत मिथ्या बतलाया गया है। वस्तुतः भगवान के अतिरिक्त कुछ भी नहीं जो कुछ दिखलाई देता है अनुभव में आ रहा है, वह सब उसी का साकार रूप है। सारे खण्ड ब्रह्माण्डों में उसी की झलक है, वह इस सम्पूर्ण विश्व के रूप में स्वयं ही स्थित है– श्रुति भी प्रमाण है–

*ईशावास्यमिदं सर्व यत्किंन्च जगत्यां जगत।*

*तेन त्यक्तेन भुन्जीथा मा गृधः कस्य स्विदधनम्॥*

(ईशावास्योपदनिषद।)

इस मंत्र में भगवान का पवित्र आदेश है कि अखिल विश्व ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी चराचरात्मक जगत तुम्हारे देखने, सुनने में आ रहा है। सबका सब उस (अलख पुरुष मूर्ति) सर्वाधार, सर्वनियन्ता, सर्वाधिपति, सर्वशक्तिमान सर्वज्ञ, सर्वकल्याण–गुणस्वरूप परमेश्वर से व्याप्त है सदासर्वदा उन्हीं से परिपूर्ण है (गीता 9/4) इसका कोई भी अंश उससे रहित नहीं है (गी. 10-39-42) एसा समझते हुए कि संसार के प्रत्येक प्राणी पदार्थ के रूप में वह अलख पुरुष ही विद्यमान है। उनको निरन्तर अपने साथ रखते हुए, सदा सर्वदा उसका रमरण करते हुए (कि वह हमेश हरक्षण हमारे अन्दर बाहर है) तुम इस जगत में ममता और आसक्ति का त्याग (त्यक्तेन) करते हुए केवल कर्तव्यपालन के लिए ही विषयों का यथा विधि उपयोग करो, अर्थात् विश्व–रूप ईश्वर की पूजा के लिए ही कर्मों का आचरण करो, विषयों में मन को मत फँसने (मागृधः) दो इसी में तुम्हारा निश्चत कल्याण है वस्तुतः ये भोग पदार्थ किसी के भी नहीं (कस्य स्विद्धनम्) मनुष्य भूल से ही इनमें ममता और आसक्ति कर बैठता है। ये सब परमेश्वर के हैं और उन्हीं की प्रसन्नता के लिए इन पदार्थों का उपयोग होना चाहिये। अतः वही ईश्वर सत्य है। हुजूर महाराज उसे "सत्यनाम" द्वारा उच्चारण करते थे।

सामर्थ्यनाम–

अपने सात नाम के मंत्र का छटा पद सामर्थ्य नाम है, जिसका तात्पर्य है सर्वशक्तिमान जिसकी सामर्थ्य के अंश मात्र से ब्रह्मा संसार की खना, विष्णु इसका पालन एवं शिव इसका विध्वंश करते हैं। संसार में जहाँ भी कहीं शक्ति समर्थ्य की झलक मिलती है वह उसी अलख पुरुष की सामर्थ्य के ही एक अंशमात्र से है मानस के सुन्दर काण्ड में श्री हनुमान जी रावण को उसकी शक्ति सामर्थ्य का परिचय इन शब्दों में देते हैं–

*सुन रावन ब्रह्माण्ड निकाया! पाइ जासु वल विरचति माया॥*

*जाके बल विरंचि हरि ईशा। पालत सृजत हरत दस सोसा॥*

*जा बल सीस धरत सहसानन। अंड कोस समेत गिरि कानन॥*
*धरइ जो विविध देह सुरत्राता। तुम्ह से सठन्ह सिखावन दाता॥*

इस प्रकार उसकी शक्ति सामर्थ्य की थाह पाना किसी के दस की बात नहीं, संसार में प्रत्येक प्राणी पदार्थों में जो शक्ति पाई जाती है वह सब उसी सामर्थ्यशाली "अलख पुरुष" मूर्ति की शक्ति सामर्थ्य के एक अंश मात्र की झलक ही है। उसकी

शक्ति सामर्थ्य का वर्णन रामचरितमानस उत्तर काण्ड के 91वें (क) दोहे के ऊपर की दो चौपाईयों से लगाकर 92 (क) दोहे तक दृष्टान्त है। यहाँ विस्तारमय से उस अलख पुरुष की शक्ति सामर्थ्य का वर्णन ठीक नहीं और संसार में अभी तक ऐसा कोई कवि या लेखक पैदा नहीं हुआ जो उसी शक्ति सामर्थ्य का सम्पूर्णता से कर सके। हाँ, उसी की कृपा से, उस अलख पुरुष मूर्ति की शक्ति सामर्थ्य की झलक मात्र का ही वर्णन वेदों एवं समस्त पुराणों में किया गया है।

## ॥ ॐ नाम सोहं नाम ॥

हुजूर के साथ नाम का अन्तिम पद और विशेष महत्त्वपूर्ण पद ''ॐ नाम-सोहं नाम'' पद है। ॐ उस अलख पुरुष'' का वास्तविक स्वरूप है। ''ॐ तत्सत'' यह उस सच्चिदानन्दधन ब्रह्म के तीन नाम हैं इन्हीं से सृष्टि के आदि काल में ब्राह्मण, वेद एवं यज्ञों की रचना हुई। जिस परमात्मा से समस्त कर्ता, कर्म और कर्म विधियों की उत्पत्ति हुई है, उसी भगवान के वाचक ॐ तत् और सत् ये तीनों नाम हैं। जब ''ॐ तत्सत्'' का उच्चारण किया जाता है तो उन सबके अंग वैगुण्य की पूर्ति हो जाती है। अतः ॐ सर्वाधार एवं सर्वान्तर्यामी उसी अलखपुरुष मूर्ति का वाचक नाम है। श्रीमद्भगवदगीता के अध्याय 27 में ॐ तत्सत् पद की व्याख्या, करते हुए भगवान कहते हैं–

*ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मण स्त्रिविधः स्मृतः।*
*ब्राह्मणास्तेन वेदाश्यच विहिताः पुरा॥* (गीता. 17/23)

अर्थात ॐ तत् और सत् इन तीनों नामों से जिस परमात्मा का निर्देश किया गया है उसी परमात्मा ने सृष्टि के आदि में वेदों, ब्राह्मणों एवं यज्ञों की रचना की है।

इन तीनों में विधि बतलाने वाले वेद ॐ नाम से ही प्रकट हुये हैं तत् नाम से अनुष्ठान करने वाले ब्राह्मण तथा सत् नाम से ''यज्ञ'' क्रिया प्रकट हुई। यज्ञ तप, दान आदि क्रियाओं में कोई भूल चूक या कमी रह जाये तो परमात्मा के इन (ॐ तत्सत्) नामों के उच्चारण मात्र से सम्पूर्ण कमियाँ दूर हो जाती हैं। अपने ॐ नाम का महत्त्व कथन करते हुए भगवान कहते हैं–

*तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः।*

*प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम॥* (गीता. 17/24)

''इसलिए वैदिक सिद्धान्तों को मानने वाले पुरुषों की शास्त्रविधि से नियत, यज्ञ, दान और तप रूप कियाएं सदा ''ॐ'' इस परमात्मा के नाम का उच्चारण करके ही आरम्भ होती हैं। जैसे गायें साँड के बिना फलवती नहीं होती ऐसे ही वेदों की जितनी ऋचाएँ हैं, श्रुतियाँ हैं, वे सब ॐ का उच्चारण किये बिना फलवती नहीं होतीं अर्थात् फल नहीं देती। ॐ ''उसअलखपुरुषमूर्ति'' का वाचक है, इसका सबसे पहले उच्चारण किया जाता है यह सबसे पहले प्रणव (ॐ) रूप में प्रकट हुआ, उस

प्रणव की तीन मात्राएँ हैं (आकार उकार तथा मकार) इन मात्राओं से ही त्रिपदा गायत्री प्रकट हुई। इस दृष्टि से ॐ सबका मूल है और इसी के अन्तगति गायत्री भी है तथा सब वेद भी इसके अन्तर्गत समाए हुये हैं। अतः ॐ नाम उस अलख पुरुष का वाची है संसार में जितने भी मंत्र हैं उनके आदि में ओउम्कार का योग है बिना प्रणव के मंत्र का कोई फल नहीं। किसी संत ने ॐ की व्याख्या इस प्रकार की है–

दोहा- *चारमात्रा ओम् की, अकार उकार मकार।*
*चौथे पद अर्द्धमात्र व्यापक रहित विकार॥*
*ॐ गुरु, माता पिता, ॐ जमी आसमान।*
*ओम चराचर में बसा, करो "ॐ" का ध्यान॥*

इस प्रकार हमारे गुरुदेव के सात नामों में ॐ नाम आदि और अन्त में समाया हुआ है। अन्त में 'सोंह' पद की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए यह निवेदन है कि "ॐ" नाम जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है पूर्ण ब्रह्मपरमात्मा का वाचक है। जब साधक इन नामों का जप और इनके अर्थस्वरूप अपने चित्त में धारणा को दृढ़ करता है तो उसे जो अनुभव होता है। वही "सोंह" पद से उद्धृत किया गया है। जब जीव उस शिव का ध्यान कर गाढ़ स्थिति को प्राप्त कर लेता है तो उसे शिवोहं या सोहम् (वह मैं हूँ) का अनुभव हो जाता है, यही जीवमात्र का ध्येय है। श्रुतियाँ जिसे महावाक्यों के नामों से उद्धृत करती है यथा "अहंब्रह्मास्मि" "सर्वखल्विदं ब्रह्म," "तत्वमसि" आदि इनसे जीव ब्रह्म की एकता जानी जाती है। उपर्युक्त सात ब्रह्मवाची नामों को ही गुरुदेव सात नाम मंत्र के रूप में दीक्षा देते समय शिष्यों के कान में कहा करते थे, जो मुझ जैसे अल्पज्ञ ने इस लेख के माध्यम् से सार्वजनिक रूप से उजागर कर दिया। इन सात नामों की जानकारी मुझे उनके समकालीन सेवकों से उनके द्वारा सुनाये संस्मरणों के माध्यम् से हुई है। यह सात नाम का मंत्र पूर्ण रूपेण अनुभूत है। इसके माध्यम से साधक उस परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर इसे सोहं (वह मैं हूँ) रूप से अथवा वह ब्रह्म मैं हूँ (अहंब्रह्मास्मि) रूप से अनुभव कर परम सिद्धावस्था को प्राप्त कर सकता है। साधारण साधकों के लिए इसके अनुष्ठान की विधि इस प्रकार है। सबसे पहले श्रद्धाविश्वासपूर्वक सच्चे हृदय से गुरुदेव श्री श्री 1008 श्री मनोहरदासजी महाराज को अपने सद्गुरु मानते हुए उनके स्थूल मूर्ति विग्रह को अपने ध्यान हेतु धारण करे, तत्पश्चात् उनके द्वारा प्रदत्त इस सात नाम के मंत्र को साक्षात उन्हीं के श्रीमुख से उच्चरित एवं प्रदत मानते हुए नित्य नियम से इन नामों के अर्थों की भावना हृदय में धारण करते हुये श्रद्धा विश्वासपूर्वक जप करें।" जप एवं ध्यान गुप्तरूप से किये जाएं क्योंकि हुजूर साधना की गोपनीयता पर विशेष जोर दिया करते थे। शरीर मन की शुद्धता तो आवश्यक है, ही जैसा कि हमें "याद है तो आबाद है" लेख में यमनियमों का वर्णन किया है

उनको धारण किये बिना तो हम साधबा के अधिकारी वन ही नहीं सकते। अतः अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह आदि यमों एवं शौच, सन्तोष, तप स्वाध्याय तथा गुरुदेव स्वरूप ईश्वर की शरणागति रूप नियमों को धारण कर फिर उस गुरु के वचन रूपी मंत्रों के जप का अधिकारी वनाता है। इस प्रकार योग्यता प्राप्त कर जो इस सात नाम के मंत्र का हुजूर बाबा के ध्यानपूर्वक जप एवं ध्यान करेगा उसकी समस्त लौकिक परलौकि कामनाएं सिद्ध होगी–

*ध्यानमूलं गुरुर्मूर्तिः पूजामूलंगुरोः पदम्।*

*मंत्र मूलं गुरुर्वाक्यं मोक्ष मूलं गुरोकृपा॥*

रात्रि के अन्तिम प्रहर ब्रह्म बेला में दिना किसी प्रदर्शन के अपने गुरुदेव के श्री ग्रिह का ध्यान एवं उनके इस सात नाम के मंत्र का जो मनबुद्धि का योग करके जप करता है तथा हुजूर के वचनों के अनुसार–

*दीनताई दया और नम्रताई दुनिया वीच,*

*बन्दगी से प्यार राखि भूखे को खिलाएगा।*

*चार बीसीचार से, तू वचेगा मेरे यार,*

*साधुओं की संगत से तू वड़ा सुख पायेगा॥*

नियमपूर्वक साधना (बन्दगी) को उत्तरोत्तर वढ़ाता, जायेगा तो सात नामों के अन्तिम पद सोहं ''पद का अनुभव करके स्वयं ब्रह्म स्वरूप वन जायेगा, इसमें कुछ भी संसय नहीं है। भगवान के भी वचन हैं।

*तेषां सतत् युक्तानां भजतां प्रीति पूर्वकम्।*

*ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥* (गीता. 10/10)

''निरंतर मेरे ध्यान आदि में लगे हुए और प्रेम पूर्वक भजने वाले भक्तों को मैं, वह तत्व ज्ञान रूप योग देता हूँ जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं अर्थात् वे मुझ में ही (अहंब्रह्मादि एकाकार हो जाते हैं। यहाँ तक हमने हुजूर महाराज बाबा श्री श्री 1008 श्री मनोहर दास जी महाराज, द्वारा बोले जाने वाली ब्रह्मरूप गुरुदेव'' की वन्दना एवं उनकी साधना के आधार ब्रह्मवाचो सात नाम के मंत्र के आलोक में उस अलख-पुरुष'' के स्वरूप का निरुपण किया जिस अलख पुरुष मूर्ति'' की रट-हमेशा गुरुदेव के मुखाविंद से सदैव निसृत होती रहा करती थी। उसके वास्तविक भेद के ज्ञाता तो आप स्वयं ही थे। लेकिन उनकी वन्दना एवं सात नाम के मंत्र में प्रयुक्त हुये ब्रह्म के विधेय एवं निषेध्य विशेषणों को व्याख्या से हमने उस अलख पुरुषमूर्ति के स्वरूप का एक अंशमात्र वर्णन करने का साहस किया है। हुजूर बाबा के वचन वेद एवं उपनिषदों के सार तत्व थे। जैसा कि पूर्व में वर्णन किया जा चुका है कि हुजूर का आध्यात्मिक दर्शन गीता एवं उपनिषदों से प्रभावित है। वे सामान्य

साधकों को विष्णु सहस्त्रनाम एवं गीता के अध्ययन की प्रेरणा दिया करत था जगद्गुरु शंकराचार्य ने भी एक पर स्थान कहा है–

*गेयं गीता नाम सहस्त्रं, ध्येयं श्रीपतिरूपमजस्त्रम।*

*नेयं सज्जन संगे चित्तं देयं दीनजनाय च वित्तम्॥*

अर्थात् गीता और विष्णु सहस्त्र नाम का नित्य पाठ करना चाहिये भगवान विष्णु के स्वरूप का निरन्तर ध्यान करना चाहिये, चित्त को संतजनों के संग में लगाना चाहिये और दीनों (गरीबों) को धन से मदद करनी चाहिए। जगद्गुरु शंकराचार्य की वाणी से मुझे हुजूर के ही उपदेशों की ध्वनि सुनाई पड़ती है। हो भी क्यों न हमारे हुजूर भी जगद् गुरु ही थे, उनकी वाणीभक्ति वेदान्त के अनोखे उपदेशों से ओत-प्रोत थी। अलख पुरुष मूर्ति के स्वरूप कथन में अव थोड़ा सा गीतोक्त निर्णय भी देख लेना हम उचित समझते हैं। जिस प्रकार उस ''अलख पुरुष मूर्ति का स्वरूप कथन हुजूर की वाणियों में मिलता था, ठीक उसी तरह श्री मद्भगवद् गीता में भी उस अलख पुरुष मूर्ति के स्वरूप का कथन करते हुये स्वयं ब्रह्म श्री कृष्ण भगवान अपनी पवित्र वाणी से कहते हैं–

*ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुमे।*

*अनादिमत्पर ब्रह्म न सन्तन्नासुदुच्यते॥* (गी. 13/2)

जो ज्ञेय है उस अलख पुरुष मूर्ति) को मैं अच्छी तरह कहूँगा। जिसको जानकर मनुष्य अमरता का अनुभव कर लेता है, वह (ज्ञेय तत्व) अनादि और परम ब्रह्म है, उसको न सत् कहा जा सकता है और न असत् ही कहा जा सकता है। यहाँ पर उस अलख पुरुष मूर्ति के प्रधानतः चार विशेषणों का उल्लेख किया गया है। पहली बात तो यह वतलाई गई है कि उसको जानकर मनुष्य अमरता का अनुभव कर लेता है अर्थात् स्वतः सिद्ध तत्व की प्राप्ति हो जाती है। जिसकी प्राप्ति होने पर कुछ भी जानना, करना और पाना शेष नहीं रहता। दूसरे शब्दों में यूं कह सकते हैं कि वह मनुष्य कृतकृत्य ज्ञात ज्ञातव्य एवं प्राप्त प्राप्तव्य हो जाता हैं।

हमारे गुरुदेव ने उस अलख पुरुष मूर्ति को पूर्ण रूपेण जान लिया था। उसी का परिणाम है कि उन्होंने अपने निज स्वरूप अजर, अमर, अविनाशी को प्राप्त कर लिया था वे उस अमरता की झलक अपने सात नाम के मंत्र–''अजर नाम अमर नाम'' कह कर दिया करते थे। इन नामों की व्याख्या में पहले कहा जा चुका है कि मूलतः जीव उसी ईश्वर का अविनाशी अंश है, लेकिन उसने मरणशील शरीरादि के साथ एकता करके अपने को जन्मने मरने वाला मान लिया है। उस अलख पुरुष मूर्ति (परमात्म तत्व) को जान लेने से यह भूल मिट जाती है और जीव (गुरु कृपा से) अपने वास्तविक स्वरूप–

*ईश्वर अंस जीव अविनासी।*

*चेतन अमल सहज सुख रासी॥*

इस तरह अपनी अमरता नश्वरता का अनुभव उस "अलख पुरुष मूर्ति" के जानने मात्र से हो जाता है। भगवान इस गूढ रहस्य को अपने शब्दों में ''यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते''। पद द्वारा कहते हैं कि जिसको जानकर यह जीव अमरता का अनुभव कर लेता है। उक्त श्लोक में दूसरी विशेषता ''अनादिमत्'' पद द्वारा बतलाई है इसके माध्यम् से भगवान उस अलख पुरुष मूर्ति के अनादि स्वरूप का वर्णन करते हैं। उस अलख पुरुप अविनाशी से यावन्मात्र संसार उत्पन्न होता है, उसी में रहता है और अन्त ये उसी में लीन हो जाता है। परन्तु वह अलख पुरुष मूर्ति आदि मध्य तथा अन्त में ज्यों का ज्यों एक रस विद्यमान रहता है। अतः उसे यहां अनादि कहा गया है तीसरा विशेषण पर-ब्रह्म है–गीता में ब्रह्म शब्द प्रकृति एवं वेदों के लिए भी प्रयुक्त हुआ है, लेकिन पर-ब्रह्म तो एक मात्र परमात्मा ही हैं। जिससे बढ़कर दूसरा कोई, व्यापक, निर्विकार सदा रहने वाला तत्व नहीं है वह परम ब्रह्म कहा जाता है। उक्त श्लोक में उस ''अलख पुरुष मूर्ति'' को न तो सत् ही और असत् ही बतला कर परस्पर विरोधी बातें कहीं हैं। संसार में दो ही प्रकार की सृष्टि है चर एवं अचर सत् एवं असत् लेकिन यहाँ पर उस परमात्मा को न तो ''सत ही'' और असत ही कहकर एक विचित्र बात कही है।

जो वस्तु प्रमाणों द्वारा सिद्ध की जाती है उसे सत् कहते हैं। वह ''अलख पुरुष'' स्वतः प्रमाण नित्य अविनाशी परमात्मा किसी भी प्रमाण द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता क्योंकि परमात्मा से ही सब की सिद्धि होती है। उस अलख पुरुष तक किसी भी प्रमाण की पहुँच नहीं है। श्रुति ने भी कहा है कि उस जानने वाले को कैसे जाना जा सकता है। वह परमात्मा प्रमाणों द्वारा जानने में आने वाली वस्तुओं से अत्यन्त विलक्षण है, इसलिए परमात्मा को सत नहीं कहा जा सकता। जिस वस्तु का वास्तव में अस्तित्व नहीं होता उसे असत् कहते हैं किन्तु उस अलख पुरुष मूर्ति का अस्तित्व नहीं है, ऐसी बात नहीं है वह अवश्य है और वह है इसी से अन्य सब का होना भी सिद्ध होता है। अतः वह "अलख पुरुष मूर्ति" सत् और असत् दोनों से परे विलक्षण तत्व है। वास्तविकता तो यह है कि उसके साक्षात् स्वरूप का वर्णन वाणी द्वारा हो ही नहीं सकता, श्रुति प्रमाण है–

*यतो वाचो निवर्तनते अप्राप्य मनसा सह।*

*आनन्द ब्रह्मणो विद्वान ने विभेति कृतश्चनेति॥* (तैन्तिरीय उ.)

अर्थात् मन के सहित वाणी आदि सभी इन्द्रियाँ जहाँ से, उसे न पाकर लौट आती है, उस ब्रह्म के आनन्द को जानने वाला किसी से भी भय नहीं करता। भगवान ने उस अलख पुरुष मूर्ति के विलक्षण तत्व को बतलाते हुये कहा है कि वह

न तो सत् है न असत् ही तथा उसका वास्तविक स्वरूप मन वाणी की पहुँच से परे है जो कुछ भी वर्णन किया जावेगा उसे उसका तटस्थ लक्षण मात्र समझना चाहिए।

उपर्युक्त तथ्य को कुछ उदाहरणों से यूं समझा जा सकता है कि जैसे पृथ्वी पर रात दिन दोनों होते हैं प्रकाश की उपस्थिति को दिन और प्रकाश के न होने को रात कहते हैं। परन्तु सूर्य में न रात है और न दिन ही। कारण कि सूर्य में रात और दिन दो भेद नहीं होते। अन्धकार का अत्यन्त अभाव होने से सूर्य में दिन भी नहीं कह सकते क्योंकि दिन शब्द का प्रयोग रात की अपेक्षा से किया जाता है। ठीक इसी तरह उस परमात्मा में असत् का अभाव होने के कारण उसे सत् भी नहीं कहा जा सकता है और जो परमात्मा निरन्तर सत है उसे असत् भी नहीं कहा जा सकता। जैसे सूर्य दिन रात दोनों से विलक्षण केवल प्रकाश रूप है, ऐसे ही वह अलख पुरुष मूर्ति सत् और असत् दोनों से विलक्षण है, मानस में श्री तुलसीदास जी इसी तथ्य को प्रकट करते हैं।

*राम सच्चिदानन्द दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लव लेसा॥*

*सहज प्रकाश रूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि विग्यान विहाना॥ (रा.मा.वा. 115/5-611)*

अर्थात् श्री राम सच्चिदानन्द स्वरूप सूर्य हैं। वहाँ मोह रूपी रात्रि का लव लेश भी नहीं है। वे स्वभाव से ही प्रकाश रूप और (षडैश्चर्य युक्त) भगवान हैं, वहाँ तो विज्ञान रूपी प्रातःकाल भी नहीं होता। क्योंकि जब वहाँ से अज्ञान रूपी रात्रि ही नहीं, तो विज्ञानरूप प्रातःकाल कहँ से होगा? भगवान तो नित्य ज्ञान स्वरूप हैं। दूसरी बात यहै है कि सत् और असत् का निर्णय बुद्धि करती है और ऐसा वहीं होता है जहाँ मन वाणी और बुद्धि का विषय हो परन्तु वह ''अलख पुरुष मूर्ति'' तो मन वाणी और बुद्धि से सर्वथा अतीत है। अतः उसकी सत् असत् संज्ञा नहीं होती। अब तक हमने उस ''अलख पुरुष मूर्ति के तत्व रहस्य के जानने का महात्म्य और उसकी विलक्षणता के बारे में जानकारी कि उसके तत्व जानते ही मनुष्य अमरता का अनुभव कर लेता है वह कृत-कृत्य ज्ञात ज्ञातत्व एवं प्राप्त प्राप्तव्य हो जाता है। आगे हम उसी ''अलख पुरुष'' के गीतोक्त सगुण–निराकार स्वरूप की झाँकी देखते हैं भगवान अपने प्रिय शिष्य एवं नित्र अर्जुन को उस विलक्षण तत्व का स्वरूप वर्णन इस प्रकार करते हैं–

*सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्*

*सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥ (गीता. 13-13)*

अर्थात् वे (अलख पुरुष मूर्ति) परमात्मा सब जगह हाथों पैरों वाले, सब जगह नेत्रों सिरों और मुखों वाले तथा सब जगह कानों वाले हैं, वे संसार में सबको व्याप्त करके स्थित हैं। भगवान के सब जगह हाथ, पैर, नेत्रों, सिर, मुख, और कान कहने का तात्पर्य है कि वह अलख पुरुष मूर्ति किसी भी प्राणी से दूर नहीं है।

कारण कि भगवान सम्पूर्ण देश काल, वस्तु व्यक्ति घटना, परिस्थिति आदि में परिपूर्ण रूप से विद्यमान है। भगवान (अलख पुरुष मूर्ति) के सब जगह हाथ हैं। अतः वे हमारी रक्षा कहीं भी किसी भी परिस्थिति में करने को समर्थ हैं। दूसरे वह अलख पुरुष सब ओर हाथ वाला होने के कारण उन्हें कोई भी वस्तु कहीं से भी समर्पण की जाये वे वहीं उसे ग्रहण करने में समर्थ हैं। सब जगह पैरों वाला होने के कारण भक्तों द्वारा पुकारने पर वहीं पहुँचने में समर्थ हैं। हम चाहें जिस स्थान पर उनके चरणों में ढोक दे सकते हैं, वहीं वे हमारा प्रणाम स्वीकार कर लेते हैं। सब और आँख वाला होने के कारण वह अलख पुरुष हमें तथा हमारे आचरण को सब जगह देख लेता है उनसे कुछ छुपा नहीं है। उनका सिर सब जगह होने के कारण हम उसके सत्कारार्थ कहीं भी पुष्प चढ़ा सकते हैं, पेड़ पर लगने वाले पुष्प उसी के सिर पर रखे हैं, जब हवा के झौकें से भूमि पर गिरते हैं तो भी उसी अलख पुरुष मूर्ति के सिर पर ही झरते हैं क्योंकि उनका सिर सब जगह है।

उस अलख पुरुष मूर्ति का मुख सब जगह होने के कारण उन्हें निवेदन किया गया नैवद्य उन्हीं को प्राप्त होता है। वह कहीं भी किसी मुख से या मनुष्य के अन्तः करण में कोई भी बात कह सकने में समर्थ है। वह ''अलख पुरुष मूर्ति'' सब जगह की गई हमारी प्रार्थना चाहे वह परा पश्चन्ती या वैश्वरी वाणी, किसी रूप में की गई हो, सुन सकने में समर्थ हैं, क्योंकि वह सब ओर कानों वाला है। हमारी गुप्त एवं प्रकट सभी प्रार्थनाओं को वह स्पष्ट सुनता है। किसी संत ने उन भगवान की व्यापकता को ध्यान में रखते हुए कहा है–

*चहुदिसि आरति, चहुँ दिसि पूजा।*

*चहु दिसि राम, और नहिं दूजा॥*

''सर्वमावृत्य तिष्ठति'' पद द्वारा उसी अलख पुरुष मूर्ति की सर्वव्यापकता का प्रतिपादन करते हुये भगवान स्वयं कहते हैं कि वह संसार में सबको व्यापक करके स्थिति हैं। इस बात का मुख्य अभिप्राय यह है कि जैसे आकाश वायु, अग्नि जल और पृथ्वी का कारण होने से उन चारों को व्याप्त करके स्थित हैं। ठीक उसी प्रकार वह अलखपुरुषमूतिं चराचर जीव, जगत को व्याप्त किये हुए स्थित हैं। अतः सब कुछ उसी से परिपूर्ण है। हमारे हुजूर बाबा श्री मनोहरदास जी महाराज जिस अलखपुरुषमूर्ति में अपने को तदाकार किये रहा करते थे। उसके स्वरूप को गीता का यह उपर्युक्त श्लोक पूर्णतः स्पष्ट करता है हमारे बाबा जो स्वयं प्रब्रह्मस्वरूप हो गये थे, आज भी अपने भक्तों को उनके पुकारने, ध्यान करने एवं उनके नाम का उच्चारण करने मात्र से सब जगह, सब परिस्थितियों में उनकी मदद करते हैं। आपकी दृष्टि में वह अलख पुरुष प्रत्येक स्थान पर अपने सम्पूर्ण रूप से विद्यमान है वह बाहर ही नहीं समस्त जीव, जगत के अन्दर अन्तर्यामी रूप से व्याप्त है यह है कि उस ''अलख पुरुष मूर्ति'' के स्वरूप का वर्णन जैसा गीता के इस 13-13

श्लोकों में किया गया है ठीक वैसा ही अक्षरसः इसी प्रकार श्वेताश्रतरोपनिषद् (3/16) में भी आया है। ब्रह्म की स्वर्णव्यापकता का ऐसा सटीक और स्पष्ट वर्णन अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता। संत दादूदयाल अपने शब्दों में कहते हैं–

दोहा *घीव दूध में रमि रहा, व्यापक सबही ठौर।*

*"दादू" वक्ता बहुत हैं, मयि काढै ते और॥*

अर्थात् वह अलख पुरुषमूर्ति उसी प्रकार जड़ चेतन रूप इस जगत में व्यापक होकर स्थित हैं जैसे दूध में घी सर्वव्यापक होता है। दादू कहते हैं कि उस तत्व का बखान करने वाला संसार में बहुत हैं, लेकिन नंन्थन करके उसे तत्व से जान लेने वाले बहुत कम हैं। हमारे गुरुदेव बाबा ने नड़, चेतन, स्वरूप इस जगत का सूक्ष्मावलोकन कर यह पाया कि ऐसा कोई भी प्राणी, पदार्थ, परिस्थिति एवं देश, काल नहीं, जहाँ वह अलख पुरुष मूर्ति सदैव एक रस विद्यमान नहीं हो, उन्होंने बाहर एवं अपने भीतर उसी अलख की झलक दिखलाई देती थी, मानसान्तर्गत उसके प्रधान वक्त महादेव जी का कथन कि–

*"हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेमतें प्रकट होहिं मैं जाना॥*

*देस काल दिसि विदिसिहु माहीं। कहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाही॥ मानस बात॥*

अर्थात् भगवान सब देश, काल, दिशा, विदिशा, सब स्थानों में समान रूप से व्याप्त है। ऐसा स्थान कहीं नहीं जहाँ वह प्रभु नहीं हो। इस प्रकार उस अलखपुरुष मूर्ति की सर्वव्यापकता का निरूपण करके आगे भगवान उसकी विलक्षणता का कथन करते हुए कहते हैं।

*सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वेन्द्रिय विवर्जितम्।*

*असक्तं सर्व्भृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्त च॥ गी. 13/14*

" वे (अलख पुरुष) सम्पूर्ण इन्द्रियों से रहित हैं, और सम्पूर्ण इन्द्रियों के विषयों को प्रकाशित करने वाले हैं, आसक्ति रहित हैं और सम्पूर्ण इन्द्रियों के विषयों को प्रकाशित करने वाले हैं, आसक्ति रहित हैं और सम्पूर्ण संसार का भरण पोषण करने वाले हैं तथा गुणों से रहित एवं सम्पूर्ण गुणों के भोक्ता हैं। तात्पर्य यह है कि वे अलख पुरुषमूर्ति प्राकृत इन्द्रियों से रहित हैं अर्थात् संसार जीवों की तरह उनके हाथ, पैर, मुख, नेत्र, कान आदि इन्द्रियाँ नहीं, लेकिन इन इन्द्रियों के जो विषय हैं उन्हें ग्रहण करने में वे सर्वथा समर्य हैं, जैसे वे कानों से रहित होने पर भी भक्तों की पुकार सुन लेते हैं, त्वचा रहित होने पर भी भक्तों का आलिंगन करते हैं, नेत्रों से रहित होने पर भी समस्त प्राणियों को निरन्तर देखते रहते हैं। रसना रहित होने पर भी भक्तों द्वारा लगाये गये भोग का आस्वादन करते हैं, इसी प्रकार इन्द्रिय रहित होने पर भी वे परमात्मा शब्द स्पर्श आदि विषयों को ग्रहण करने की

सामर्थ्य रखते हैं। वे वाणी से रहित होने पर भी अपने भक्तों से बातें करते हैं, चरणों से रहित होने पर भी अपने प्रेमियों की पुकार पर दौड़े चले जाते हैं, हाथों से रहित होने पर अपने भक्तों द्वारा प्रदत्त उपहारों को ग्रहण करते हैं तथा हर देशकाल, परिस्थिति में उनकी मदद करते हैं, अतः वे इन्द्रियों से रहित होकर भी इन्दियों के विषयों को प्रकाशित करते हैं। ''आसक्त सर्वभृच्चैव'' पद से भगवान यह कहते हैं कि उनका सभी प्राणी जगत में अपनेपन का भाव है, प्रेम है, लेकिन किसी में भी उनकी आसक्ति नहीं है वे समस्त चराचर के प्राणियों को समान भाव से पालन पोषण करते हैं, हर प्राणी की उनकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, देश-काल एवं परिस्थिति के अनुसार उनकी आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। भगवान प्रत्येक प्राणी को उसकी आवश्यक वस्तु यथोचित रीति से पहुँचा देते हैं। प्राणी पृथ्वी पर हों या गहरे समुद्रों में, आकाश में हो अथवा स्वर्गादि लोकों में हो, कोई छोटा हो अथवा बड़ा सभी का भगवान समान रूप से पालन करते हैं। ''निर्गुण गुणभाक्तृत्व'' पद द्वारा यह बात स्पष्ट की गई है कि यद्यपि वह ''अलख पुरुष परमात्मा सभी गुणों से रहित है फिर भी सम्पूर्ण गुणों के भोक्ता भी वे ही हैं। जैसे माता-पिता बालक की मात्र क्रियाओं को देखकर प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार भक्तों की समस्त क्रियाओं को देखकर भगवान प्रसन्न होते हैं तथा उनकी सब क्रियाओं के भोक्ता भी वन जाते हैं।'' इस उपर्युक्त श्लोक में भगवान के जिस विलक्षण तथा अलौकिक स्वरूप का वर्णन कर परस्पर विरोधी बातें बतलाई गई हैं ठीक वैसा वर्णन श्रुतियों में भी मिलता हैः–

*''अपाणपादो जबनो गृहीता,*

*पश्चत्यचक्षुः स श्रुणोत्यकर्णः।*

*स वेत्तिवेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता,*

*तमाहुरग्रयं पुरुषं महान्तम्॥''* *(श्वेतश्रतरोउ. 3/19)*

अर्यात् वह परमात्मा हाथ व पैरों से रहित होकर भी समस्त वस्तुओं को ग्रहण करने वाला तथा वेगपूर्वक सर्वत्र गमन करने वाला है, आंखों के बिना ही सब कुछ देखता है, कानों के बिना ही सब कुछ सुनता है, वह जो कुछ भी जानने में आने वाली वस्तुएँ हैं, उन सबको जानता है, परन्तु उसको जानने वाला कोई नहीं है (ज्ञानी पुरुष) उसे महान आदि पुरुष कहते हैं।

यही विचार मानस के बालकाण्ड में पठनीय हैः–

*बिनु पद चलइ सुनई बिनु काना। कर बिनु करम करइ विधि नाना॥*

*आनने रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड जोगी॥*

*तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥*

*असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहीं बरनी॥*

(मानस बा. का. 7.5.)

अतः वह **अलख** पुरुष मूर्ति जिसका ध्यान जिसका नाम हुजुर महाराज की जबान पर सदैव रहता था। सब तरह से अलौकिक एवं विलक्षण तत्व है, जिसकी महिमा का गान करने में कोई भी समर्थ नहीं है। उस परमपुरुष की सर्वव्यापकता का निरूपण करते हुए भगवान अगले श्लोक में कहते हैंः–

*वहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।*

*सूक्ष्म त्वान्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्॥ (गीता 13.15)*

वे (अलख पुरुष मूर्ति) सभी प्राणियों के बाहर, भीतर परिपूर्ण हैं और चर अचर प्राणियों के रूप में भी वे ही हैं। दूर से दूर एवं नजदीक से नजदीक भी वे ही हैं तथा वह अलख पुरुष अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण जानने का विषय नहीं है। अर्थात् जैसे बर्फ के धड़ों को समुद्र में डाल दिया जाये तो उन घड़ों के वाहर-भीतर जल होगा और वे स्वयं भी जलरूप ही हैं। ऐसी ही सम्पूर्ण चराचर प्राणियों के बाहर भीतर परमात्मा है और वे स्वयं भी परमात्मा स्वरूप हैं। अर्थात् जो कुछ भी इस चराचरात्मक जीव व जगत के रूप में हैं वह सब कुछ परमात्मा ही है। इसी बात को भगवान ने महात्माओं की दृष्टि से "वासुदेवः सर्वम" (गीता 7.19) और स्वदृष्टि से सदसच्चाहम (गीता 9/19) में कहा है। उस परमात्मा को दूर से दूर और नजदीक से भी नजदीक कहने का भाव यह है कि किसी वस्तु का दूर और नजदीक होना, देशकृत, कालकृत एवं वस्तुकृत तीन दृष्टियों से होता है। जैसे दूर से दूर देश में वे ही परमात्मा हैं और नजदीक से नजदीक भी वे ही हैं। पृथ्वी से दूर जल है जल से दूर तेज (अग्नि) है, तेज से दूर वायु है और वायु से दूर आकाश, आकाश से दूर महतत्त्व, महतत्व से दूर प्रकृति और प्रकृति से परे परमात्मा है। इस न्याय से परमात्मा दूर से दूर सिद्ध हुए। दूर से दूर होते हुए भी वे परमात्मा व्यापक रूप से सब प्राणी पदार्थों में ही है। क्योंकि परमात्मा सब जगत के महाकारण हैं और कारण सब कार्यों में विद्यमाज रहता है। यह सिद्धान्त है। अतः वह सव के नजदीक से नजदीक है। ये सब स्थूल शरीर प्रकृति के नजदीक है, स्थूल शरीरों से नजदीक सूक्ष्म शरीर है और सूक्ष्म शरीरों के नजदीक कारण, शरीर से नजदीक अहम और अहम से बिल्कुल नजदीक परमात्मा है। इस प्रकार जीव से जितने नजदीक परमात्मा हैं उतना पास कुछ भी नहीं है। सूक्ष्म त्वातदविज्ञेयम् पद द्वारा यह बात स्पष्ट की गई है कि वह "अलख पुरुष मूर्ति" अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण इन्द्रियों और अन्तः करण का विशेष नहीं है अर्थात् हमारी इन्द्रियाँ मन बुद्धि की पकड़ में वह नहीं आ सकते। उस परमात्मा को गीता कहीं ज्ञेय (3/12.17) एवं अविज्ञय भी कहती है। इसका तात्पर्य है कि वह स्वयं के द्वारा जाना जा सकता है इसलिए तो वह ज्ञेय है और उसे इन्द्रियों, मन और बुद्धि के द्वारा नहीं जाना जा सकता अतः

उसे अविज्ञेय भी कहा गया है। उपर्युक्त श्लोक में निहित भाव को श्रुति में भी कुछ इसी प्रकार व्यक्त किया गया है।

*तदेजति तन्नैजति तद् द्वरे तद्वन्तिके।*

*तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥ ईशा. 3.5॥*

वे (अलख पुरुष मूर्ति) चलते हैं वे नहीं चलते, वे दूर से भी दूर हैं, वे अत्यन्त समीप हैं और वे ही इस समस्त जगत के बाहर भी हैं।

वे परमेश्वर चलते हैं और नहीं भी चलते। एक ही काल में परस्पर विरोधी भाव गुण तथा क्रिया जिनमें रह सकती है वे ही तो परमेश्वर हैं। यह उनकी अचिन्त्य शक्ति की महिमा है। प्रकारान्तर से यह भी कहा जा सकता है कि भगवान जो अपने दिव्य परमधाम में और लीलाधाम में अपने प्रिय भक्तों को सुख पहुँचाने के लिए अप्राकृतिक सगुण साकार रूप में प्रगट रहकर लीला किया करते हैं, यह उनका चलना है और निर्गुण रूप से सदा सर्वदा अवल स्थिति है, यह उनका न चलना है। इसी प्रकार श्रद्धा-भक्ति से हीन मनुष्यों को वे दर्शन नहीं देते। अतः उनके लिए वे दूर से दूर हैं और प्रेमी की पुकार सुनकर उसके भावानुकूल दर्शन देना ही उनका समीप से समीप होना है। इसके अतिरिक्त वह अलख पुरुष परमात्मा सदा सर्वदा सर्वत्र परिपूर्ण है इसलिए दूर से दूर एवं समीप से समीप भी वे ही स्थित हैं क्योंकि ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ वे उपस्थित न हों। वस्तुतः वे ही इस समस्त जगत के परम आधार हैं और परम कारण हैं इसलिए भीतर बाहर वे ही सर्वत्र वे ही परिपूर्ण हैं। हिरण्याकश्यप हाथ में खड्ग उठाकर मारने को उद्यत हुआ भक्त प्रहलाद से पूछता है वता तेरा ईश्वर कहाँ है? पुकार ले उसे, जिससे तेरी रक्षा हो सके। अपने पिता के प्रश्न का उत्तर भक्त शिरोमणि इस प्रकार देते हैं:–

*मुझमें, तुझमें, खड्ग खम्ब में,*

*व्याप रहे जगदीश।*

अर्थात् मेरे प्रभु सर्वव्यापी हैं वह मुझमें, तुझमें तेरी इस तीक्ष्णधार तलवार में तथा इस तेरे महल के खम्बे में भी वह मौजूद हैं। यही कारण है कि उसके विश्वास के अनुरूप भगवान नृसिंह के रूप में खम्ब फाड़कर प्रकट हो गये। द्रोपदी को वस्त्र के रूप में प्रकट हो जाना क्या यह नहीं सिद्ध करता कि वह परमात्मा हमारे सबके अत्यन्त नजदीक है। लेकिन बिना श्रद्धा विश्वास के वही दूर से दूर भी है। यह बात उपर्युक्त श्लोक (गी. 13/15) से ठीक प्रकार से स्पष्ट की गई है।

अब उस ''अलख पुरुष मूर्ति'' की सर्व समर्थता का वर्णन करते हुए भगवान स्वयं कहते हैं:–

*अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।*

*भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभ विष्णु च॥ (गी. 13/16)*

वे (अलख पुरुष मूर्ति) परमात्मा स्वयं विभाग रहित होते हुए भी सम्पूर्ण प्राणियों में विभक्त की तरह स्थित हैं। वे (ज्ञेयम) जानने योग्य परमात्मा ही सम्पूर्ण प्राणियों को उत्पन्न करने वाले, उनका भरण-पोषण करने वाले तथा संहार करने वाले हैं। इस सम्पूर्ण त्रिलोक में देखने सुनने व समझने में जितने प्राणी पदार्थ आते हैं, उन सबमें वह अलख पुरुष मूर्ति विभाग रहित (अखण्ड) होते हुए भी विभक्त की तरह प्रतीत हो रहे हैं। विभाग केवल प्रतीति मात्र है वास्तविक नहीं। जिस प्रकार एक ही आकाश घट मठ आदि की उपाधि से घटा काश, मठाकाश आदि के रूप में अलग-अलग दिखते हुए भी तत्व से एक ही हैं, ठीक इसी प्रकार वह परमात्मा भी भिन्न-भिन्न प्राणियों के शरीरों की उपाधि से न्यारा-न्यारा दिखते हुए भी तत्वतः एक ही हैं। भूत-भर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च पद द्वारा उस परमात्मा को सामर्थ्य का कथन किया गया है। उसी एक अखण्ड परमात्मा को यहाँ ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव रूप से वर्णन कर यह बात स्पष्ट हो गई है कि वे (अलख पुरुष) ही रजोगुण को स्वीकार कर ब्रह्म रूप से जगत की सृष्टि करते हैं। सत्व गुण को स्वीकार करके इस चराचर जगत का भरण-पोषण तथा तमोगुण को अंगीकार करके इस सारे जीव जगत का संहार करते हैं। हमारे हुजूर महाराज अपने सात नाम के मंत्र में सामर्थ्य नाम पद से उस अलखपुरुषमूर्ति को उपर्युक्त सामर्थ्य का ही वर्णन करते हैं कि वही एक परमात्मा अनेक रूपों में सृष्टि, पालन एवं संहार कार्य करते हैं। उसके अतिरिक्त ऐसी शक्ति किसी दूसरे में नहीं है। हमारे गुरुदेव अपनी गुरु वन्दना में अपने गुरुदेव ब्रह्म को अग्नि में, ज्योति में, प्रकाश में व्याप्त बतलाते थे। ठीक ये ही भाव श्री मद्भगवद् गीता के इस श्लोक में भी कहा गया है:–

*ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।*

*ज्ञानं ज्ञेय ज्ञानगम्यं हृदसर्वस्य विष्ठितम्॥ (गीता 13/17)*

अर्थात् वह परमात्मा (अलख पुरुष अविनाशी) सम्पूर्ण ज्योतियों का भी ज्योति और अज्ञान से अत्यन्त परे कहा गया है। वह ज्ञान रूप जानने योग्य (ज्ञेय) ज्ञान (साधन समुदाय) से प्राप्त करने योग्य (ज्ञान गम्यम्) और सबके हृदय में विराजमान है। ज्योति प्रकाश को ही कहते हैं प्रकाश ज्ञान को भी कहत हैं। इस प्रकार जिनसे प्रकाश मिलता है, वे सभी ज्योति हैं। भौतिक पदार्थ, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, तारा, विद्युत एवं अग्नि आदि के प्रकाश में दिखते हैं। अतः भौतिक पदार्थों की ज्योति सूर्य चन्द्र तथा अग्नि है। इसी प्रकार शब्दों की ज्योति कान है, स्पर्श की ज्योति (प्रकाशक) त्वचा है, रूप की ज्योति (प्रकाशक) नेत्र हैं, विभिन्न रसों का ज्ञान (ज्योति) जिह्वा से होता है। गन्ध की ज्योति (प्रकाशक) नाक है, इन पांचों इन्द्रियों से उनके शब्दादि विषयों का ज्ञान तभी सम्भव होता है जब कि उक्त इन्द्रियों के साथ मन रहता हो।

अतः उक्त पाँचों इन्द्रियों की ज्योति (प्रकाशक) मन है तथ मन से विष्यों का ज्ञान होने पर भी जब तक मन के साथ बुद्धि नहीं होती है, तब तक उस विष्य का स्पाट ज्ञान सम्भव नहीं होता। अतः मन की ज्योति (प्रकाशक) बुद्धि है, बुद्धि से सत् असत्, कर्त्तव्य, अकर्त्तव्य का ज्ञान होने पर भी अगर स्वयं (कर्ताजीव) इसको धारण नहीं करता तो वह मात्र बौद्धिक ज्ञान ही रह जाता है, वह ज्ञान जीवन में अचरण में नहीं आता, वह बात स्वयं (कर्ता) में नहीं बेठती, जो बात स्वयं में बैठ जती है, फिर वह स्थाई हो जाती है, अतः बुद्धि की ज्योति (प्रकाशक) स्वयं है, स्वयं कर्ता जीव भी परमात्मा का अंश है और परमात्मा इसका अंशी व स्वयं में ज्ञान (आकाश) परमात्मा से ही आता है। अतः स्वयं की ज्योति (प्रकाशका परमात्मा है उस स्वयं प्रकाश परमात्मा को कोई भी प्रकाशित नहीं कर सकता। उपर्युक्त विवरण से यहं सिद्ध हुआ कि वे परमात्मा, विषय, इन्द्रियों मन, बुद्धि एवं स्वयं का भी प्रकश है उसका प्रकाशित (जानने) वाला कोई नहीं। यह बात मानस के बाल काण्ड मे इस प्रकार कही गई:-

*विषय करनसुर जीव समेता। सकल एकतें एक सचेवा॥*
*सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई।*

(मानस -1-117-3)

इस प्रकार वह अलखपुरुषमूर्ति जिसके ध्यान में हमारे हुजूर बाबा रहा करते थे, सम्पूर्ण जड़-चेतन संसार का प्रकाशक है। जिस प्रकार एक के पीछे एक क्रम में बैठे हुए व्यक्तियों में से आगे वाले अपने पीछे बैठे हुए व्यक्तियों को नहीं जान सकते केवल अपने आगे बैठे व्यक्तियों को ही वे जान सकते हैं ठीक उस प्रकार विषय इन्द्रियों को नहीं जानते। इन्द्रियाँ मन को, मन बुद्धि को, बुद्धि स्वयं (जीव) को और अज्ञानी जीव उस परमात्मा को नहीं जाव सकता। परमात्मा को इनमें से कोई नहीं जानता वह (परमात्मा) सबको जानता (प्रकाश्क) है।

''तमसः परमुच्यते'' पद द्वारा कहा गय है कि वह अलख पुरुष परमात्मा अज्ञान (तमस) से अत्यन्त परे, सर्वथा असम्बद्ध है और निलिप्त भी है। इन्द्रियाँ मन, बुद्धि और अहम् (स्वयं) इनमें तो ज्ञान और ध्यान वोनों आते-जाते हैं परन्तु जो सबका परम प्रकाशक है, उस परमात्मा में अज्ञान कभी नहीं आत और आ सकता भी नहीं है। जिस प्रकार सूर्य में कभी अच्चकार नहीं आ सकता, उसी आकार उस परमात्मा में अज्ञान कभी नहीं आ सकता। अतः उस परमात्मा को यहाँ अज्ञान से सर्वथा परे कहा गया है।

ज्ञानम् ज्ञेयं ज्ञानगम्यम् पद द्वारा यहाँ वह बात स्पष्ट की गई है कि उस परमात्मा में कभी अज्ञान नहीं आता, वह स्वयं ज्ञान स्वरुप है और स्ती से सब चराचर जगत को प्रकाश मिलता है, अतः वह परमात्मा (ज्ञानम्) अर्थात् ज्ञान स्वरूप कहा गया है। इन्द्रियाँ मन बुद्धि आदि के द्वारा जनने में अने वाले विषयों का ज्ञान होता है, पर वे (ज्ञानगम्यम्) अवश्य जानने योग्य नहीं है क्योंकि विषयों को

मनने के परवात भी उसे जानना शेष रह नाता है। यास्तय मैं अवश्य जानने योग्य एक मत्र परमात्मा हैं है। उसे जान लेने पर कुछ जानना शेष नहीं रास्ता। भगवान के गीत के अध्याय पन्द्रह में कहा है कि सम्पूर्ण देवी के द्वारा जानना योग्य मैं ही हूँ और जो मुझे जान लेने है वह सर्वतिथित हो जाता है अतः परमात्मा को ज्ञेय कहा गया है। ज्ञान के द्वारा असत का त्यग होने पर परमात्मा को तत्व से जाना का सकता है। इसी कारण यहाँ परमात्मा को ज्ञानगम्यम् कहा गया है।

*"हृदयसर्वस्यविष्ठितम्"*

अर्थात् वह परमात्मा अलख पुरुष मूर्ति सब प्राणियों का इव्य में नित्य निरन्तर विराजमान है कहन का तत्पय यह है के यद्यरा वह (अलख पुरुष मूर्ति) परमात्मा सब, देष्ट कल वस्तु व्यक्ति रतन परस्यति उद्देश्य आदि में परिपूर्ण रुप से व्यापक है सीकत उसका गति स्थाना ता हृदया ही हैं।

हमारे हुजूर वद श्री श्री 1008 श्री मनोहरदासजी महाराज को अपने हृदयस्थ अलख पुरुष मूर्ति का साक्षाकार कर लिया या झंडे वह समस्त प्राणी, पदार्थों में एक रस नकार आत था उन्होंने उस अलख पुरुष मूर्ति मैं ही अपने को तदाकार कर दिया था। उनके हृदय में अन्धकार का नामर्किशक ही नहीं रहा उस ब्रह्मा ज्ञान के उनका होते ही उनका हृदय में उस परम पुरुष परमेश्वर का ही बलरूप प्रकाश शेष रहा था। उन्होंने जनता को उस अलख मूर्ति मैं ही लेन कर लिया या। महात्मा सुन्दर दास ने कहा है–

दोहा– *सीट ब्रह्म मिल जाता हैं सुन्दर उपजे ज्ञान*
*दुर भ्यो प्रतिकिम्ब जब रहयों रक हो भनु।*

उनके हृदय मे ज्योंट स्वरूप परमात्मा का परम आकाश परिपूर्ण था वे हमेशा उस ब्रह्मानन्द में झाडे रह करते थे मोह, ममत अदि उसका बनायों को उन्होंने सदैव के लिए तोड़ दिया था के हमेशा मन कर्म एवं रकन से उसी अलख पुरुष मूर्ति का भसन में लेन रहा करते थे। वे उस अचल शन्ति के शिकार पर आसीन थे जहाँ क्लेशो का सठोय अन्त ही जात है रादकदि मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में:–

*वे मोह-बन्धन-मुक्त थे, स्वच्छन्द थे, स्वाधीन थे;*
*सम्पूर्ण सुख-संयुक्त थे, वे शान्ति-शिखरासीन थे ।*
*मन से, वचन से, कर्म्म से वे प्रभु-भजन में लीन थे,*
*विख्यात ब्रह्मानन्द - नद के वे मनोहर मीन थे।।*

भारत भारती से)

*हरि ॐ तत्सत्। हरिः ॐ तत्सत्। हरिः ॐ तत्सत्।*

ooo

# अध्याय-11

*॥ ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः॥*

*बाबा मनोहर दास जीवन-दर्शन*

## अलख की झलक

हमारे श्री गुरुदेव बाबा जिस ''अलख पुरुषमूर्ति का उद्घोष अपनी वाणी से किया करते थे, वह तत्व अत्यन्त सूक्ष्म से सूक्ष्म और मन वाणी का अविषय है। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि संसार में जो कुछ दृश्य और अदृश्य रूप से दिखाई पड़ रहा है और मन बुद्धि के द्वारा जो अनुभव में आता है वह सब उसी ''अलखपुरुषमूर्ति'' की झलक है। सभी प्राणियों के बाहर एवं भीतर तथा चाराचर प्राणियों के रूप में उसी अलख पुरुष की झलक दिखलाई पड़ रही है। दूर से एवं पास से जो कुछ दिखाई देता है तथा अनुभव में आ रहा है वह उसी अदृश्य–(अलख) की झलक मात्र से है।

*बहिरन्तश्च भूतनामचरं चरमेव च।*

*सूक्ष्मत्वातद विज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्॥ (गी. - 13/15)*

अर्थात्–वह परमात्मा चराचर सब भूतों के बाहर भीतर परिपूर्ण है और चर (चेतन) एवं अचर (जड़) रूप भी वही है और वह सूक्ष्म होने के कारण अविज्ञेय है तथा अति समीप और अति दूर भी वही स्थित है।

श्री मद्भगवद्गीता के उपर्युक्त श्लोक से यह बात पूर्ण स्पष्ट है कि संसार में जो कुछ दिखाई दे रहा है सब में उसी की झलक दिखलाई पड़ रही है और झलक ही नहीं संसार के रूप में आप स्वयं भी स्थित है। कभी भी किंचितमात्र ''आप'' के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। ''सब कुछ वे ही हैं'' वासुदेव :''सर्वम्''। इस से पूर्व हमने अलख पुरुषमूर्ति'' नाम के लेख में उस अलख (अदृश्य) पुरुष के बारे में विस्तारपूर्वक विचार किया उसके स्वरूप को स्पष्ट करने वाले उसके विधेय एवं निषेध्य विशेषणों के अर्थों की व्याख्या एवं उसके प्रभाव को व्यक्त करने वाले नामों का संक्षिप्त उदाहरणों द्वारा विवेचन प्रस्तुत किया गया। ऐसा हमने अपने गुरुदेव बाबा के ''अलखपुरुषमूर्ति'' के रहस्य की जानकारी हेतु किया। श्री बाबा साहब का अलख पुरुष इस विश्व, ब्राह्माण्डों के व्याप्त वह संचिदानन्दघन परमात्मा ही है जो सम्पूर्ण चराचर रूप से इन तीनों लोकों में स्थित है। उसी अलखपुरुष की सत्ता का उसकी झलक का इस प्रस्तुत लेख में विचार करते हैं। जो सत्ता अदृश्य है, मन वाणी से परे है उसी सत्ता का विविध चराचरात्मक जगत में प्रत्यज्ञ दर्शन ही उसकी झलक है। उसकी सत्ता से ही संसार में सभी प्रकार की आन्तरिक एवं बाह्य क्रियाएं हो रही हैं–

*टेरी सत्ता के दिना हे प्रभु मंगल मूल।*

*पत्ता तक हिलता नहीं, खिले न कोई फूल॥*

किसी संत ने उपर्युक्त दोहे के माध्यम से उसी अलख पुरुष की शक्ति सामर्थ्य को प्रकट किया है। यह सारा संसार उस असीम, अलख, अविनाशी, अगोचर, कहे जाने वाले उसी परमात्मा के एक अंश मात्र से धारण किया हुआ है। इस संसार की जानकारी, ही कोई सम्पूर्णता से नहीं कर सकता, तो फिर उसके निर्माण महान् परमात्मा की जानकारी करना तो कल्पना से परे की वात है। भगवान कहते कि– इस सम्पूर्ण जगत को मैं अपनी योगमाया के एक अंश मात्र से धारण करके स्थित हूं।'' भगवान को और उनके इस संसार के रूप में प्रकट होने के रहस्य को न तो देवता ही जानते हैं और न महर्षिगण ही क्योंकि भगवान सब प्रकार से देवताओं और महर्षियों के आदि कारण है कोई भी कार्य अपने कारण को सम्पूर्णता से नहीं जान सकता है–

*न मे विदु सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।*

*अहमादिर्हि देवानं महर्षिणां च सर्वशः॥ (गो. 10/2)*

अर्थात ''मेरे प्रकट होने को न देवता जानते हैं और न महर्षि क्योंकि सब प्रकार से देवताओं और महर्षियों का आदि हूं।

इस सम्पूर्ण चरावर त्रिलेकी में भगवान विविध रूपों में स्वयं ही अनेक प्रकार की लीलाएँ कर रहे हैं प्रत्येक क्षेत्र में हम उनकी झलक देख सकते हैं। उनको सुन सकते हैं तथा उनको व्यवहार में ला सकते हैं। अर्जुन ने भगवान से पूछा कि मैं इस संसार में किस-किस रुप में आपको देख सकता हूँ। अर्थात् ''आप किन-किन भावों में मेरे द्वारा चिन्तन किये जा सकते हैं?''

इन प्रश्नों के उत्तर में स्वयं श्री कृष्ण भगवान कहते हैं कि कुरुश्रेष्ठ! मेरी विभूतियों के विस्तार का अन्त नहीं है इस बात से भगवान अपने असीम रूप को व्यक्त करते हैं, उनके कहने का तात्पर्य यही है कि जैसे परमात्मा असीम, अनन्त है वैसे ही उनकी विभूतियाँ भी अनन्त हैं। भगवान ने अपने मित्र और परम शिष्य अर्जुन को संक्षेप में इस सम्पूर्ण जगत में दिखाई देने वाली अपनी झलक को कहकर सुनाया । भगवान ने इस चाराचर जगत में व्याप्त अपने स्वरूप की एक संक्षिप्त झलक इस प्रकार प्रस्तुत की–

समस्त प्राणियों का आदि मध्य एवं अन्त तथा उनके अन्तःकरण में आत्मारूप से मैं ही स्थित हूं। अदिति का पुत्र विष्णु सूर्य चन्द्र एवं नक्षत्रों एवं मरूतों के रूप में मैं ही हूं। समस्त वेदों, देवों, नदियों पर्वतों, समुद्रों वनस्पति वृक्षादि के रूप में मैं ही विद्यमान हूँ। संसार में चारासी लख योनियों के रूप में पशु, पक्षी एवं कीट पतंगे आदि के रूप में जितने भी जीव हैं एवं मेरे अंश मात्र से हैं। यहाँ तक कि सम्पूर्ण

सर्गों के आदि, मध्य एवं अन्त में, मैं ही हूँ। विद्याओं में, आध्यात्म विद्या में मैं ही हूँ तथा अक्षरों में अंकार तथा समासों में द्वन्द्व समास हूँ, अक्षय काल अर्थात् काल का भी महाकाल भी मैं ही हूँ। अपने विस्तार का वर्णन करके भगवान कहते हैं कि–

*यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।*

*न तदस्ति बिना यत्स्यान्भया भूतं चराचरम्॥ (गी. 10/39)*

अर्थात् ''सम्पूर्ण प्राणियों का जो बीज है, वह बीज मैं ही हूँ क्यों कि मेरे बिना कोई भी चर-अचर प्राणी नहीं है अर्थात् चर-अचर सब कुछ मैं ही हूँ।''

भगवान ने उक्त श्लोक में समस्त विभूतियों का सार अपने को बतलाये हुये कहा है कि सबका बीज अर्थात् कारण वे स्वयं ही हैं। क्योंकि इस संसार के निमित्त कारण भी वे ही हैं'' और उपादान कारण भी आप ही स्वयं हैं अर्थात् संसार को बनाने वाले भी वे ही हैं तथा संसार रूप से वनने वाले भी भगवान् स्वयं ही हैं। इस संसार में सर्वत्र उन्हीं की झलक दिखलाई पड़ती है। संसार में जड़ चेतन स्थावर संगम चर-अचर आदि जो कुछ भी देखने आ रहा है वह सब भगवान के बिना सम्भव नहीं है। भगवान सब के कारण (बीज) हैं सब कुछ उन्हीं से है और सब कुछ वे ही हैं। हमारी इन्द्रियां मन, बुद्धि के द्वारा जो कुछ भी जानने, समझने में आ रहा है, वह सब उसी अलख पुरुष की झलक है। भगवान श्री कृष्ण ने गीता के अध्याय 10 में बीसवें श्लोक–''अहमात्मा गुडाकेश'' से लेकर 39वें श्लोक ''बीजं तदहमर्जुन'' तक अपनी लगभग बयासी विभूतियों में अपनी ही झलक का प्रतिपादन किया है। इन सब विभूतियों में अपनी ही झलक बताने का भगवान का मुख्य तात्पर्य यह है कि कोई भी वस्तु, व्यक्ति, घटना, परिस्थिति सामने आये, उन सब में हमें भगवान के दर्शन होने चाहिये। भगवान हमेशा हमारे सामने मन, बुद्धि एवं चित्त के विषय बने रहे। हमें उनकी अखण्ड स्मृति बनी रहे। संसार में हमें जहाँ-जहाँ भी कोई विशेषता दिखाई पड़े वहां हमें ईश्वर की ही झलक दिखलाई दे। वह भगवान हमें हर व्यक्ति वस्तु एवं भाव में प्रत्यक्षवत् दिखाई पड़े यही उद्देश्य भगवान का इन समस्त विभूतियों के वर्णन करने में है।

*यच्च किंचित जगत सर्वं दृश्यते श्रुयतेअपि वा।*

*अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः॥ (नारायणोपनिषद)*

अर्थात् यह जो कुछ भी जगत देखने या सुनने में आता है, इस सबको बाहर और भीतर से व्याप्त करके भगवान नारायण स्थित हैं।

श्रीमदभागवत् में ग्यारहवें स्कन्ध के सोलहवें अध्याय में भी भगवान ने अपने प्यारे भक्त उद्धव जी को अपनी दिव्य विभूतियों को विस्तार से सुनाया है भगवान स्वयं अनन्त हैं और उनकी विभूतियाँ, गुण लीलाएँ भी अनन्त हैं, कोई दूसरा उनका पार नहीं पा सकता है–

भगवान ने अपनी दिव्य विभूतियों को अनन्त बतलाकर उनका संक्षेप में वर्णन किया है। संसार में जहाँ हमारा मन किसी विशेषता को देखकर आकर्षित होता है वहाँ-वहाँ उस विशेषता को भगवान की ही मानें उस वस्तु व्यक्ति में भगवान की झलक ही देखें विभूति योग वर्णन का मुख्य उद्देश्य यही दिखाई देता है। संसार के सब नामों एवं रूपों में उसी की झलक दिखलाई पड़े हमारी इन्द्रियों मन एवं बुद्धि द्वारा जो भी ग्रहण किया जावे चिन्तन किया जावे या विचार किया जावे समस्त रूपों में भगवान के साथ अखण्ड हमारा सम्बन्ध स्थापित होना चाहिए।

*यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।*

*तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥ (गी. 10/41)*

अर्थात् जो जो ऐश्वर्य युक्त, शोभा युक्त और बलयुक्त वस्तु है, उस उसको तुम मेरे ही तेज (योग) के अंश से उत्पन्न हुई समझो। ऐसा कहकर भगवान सर्वत्र अपनी ही झलक दिखला रहे हैं। संसार में जिस किसी सजीव निर्जिव वस्तु, व्यक्ति, घटना, परिस्थिति, गुण, भाव, क्रिया आदि में जो कुछ ऐश्वर्य दीखे शोभा या सौन्दर्य दिखे, बलवन्ता दीखे तथा जो कुछ भी विशेषता विलक्षणता योग्यता दीखे उसे भगवान के तेज के एक अंश से उत्पन्न जानना चाहिए क्योंकि उनकी झलक के बिना कहीं भी कुछ भी विलक्षणता हो ही नहीं सकती। अगर भगवान को छोड़कर किसी दूसरे व्यक्ति वस्तु आदि की विशेषता देखी जाती है तो यह भगवत् निष्ठा का लक्षण नहीं वरन् पतन का चिह्न है। संसार में छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी वस्तु व्यक्ति क्रिया आदि में जो महत्ता सुन्दरता सुख रूपता दीखती है, वह वास्तव में सांसारिक वस्तु का है ही नहीं, अगर उस वस्तु का वह गुण या क्रिया होती तो सब समय उसमें दिखाई पड़ती। इससे सिद्ध होता है कि वह गुण क्रिया एवं विशेषता उस वस्तु की न होकर किसी और की ही झलक है और वह है परमात्मा। संसार की समस्त वस्तुओं एवं व्यक्तियों में जो सुन्दरता सुख रूपता दिखलाई पड़ती है वह उसी अलखपुरुषमूर्ति को झलक मात्र है। हम उस अलखपुरुषमूर्ति की झलक के रहस्य को नहीं जानकर हमारी वृत्ति परमात्मा की महिमा की ओर न जाकर उस वस्तु की ओर ही जाती है तो हम परमात्मा से दूर होकर इस जड़ संसार के आकर्षण में फंस जाते हैं, हमारे मन में उस वस्तु के भोग एवं उसके संग्रह की कामना पैदा हो जाती है और यही हमारी पतन का प्रमुख कारण है। वास्तविकता तो यह है कि संसार में जितने भी वस्तु व्यक्ति, पदार्थ हैं उन सभी के रूप में आप स्वयं ही प्रकट हैं फिर उनके अन्तर्गत पाये जाने वाले सुन्दरता आदि गुण भी उसी परमात्मा से आगत हैं। तत्वदर्शी व्यक्ति की दृष्टि में सारे गुणों एवं विशेषताओं का घर एक मात्र भगवान ही हैं। जैसे विद्युत शक्ति संचालित विविध उपकरणों यथा रेडियो, कूलर, हीटर तथा रेल के इंजिन में दिखाई पड़ने वाली विशेषताओं को उन यंत्रों की मानना और उसके पीछे

छुपी विद्युत शक्ति के महत्त्व को स्वीकार न करना अल्पज्ञों का ही काम है। ठीक उसी प्रकार समस्त सांसारिक प्राणी पदार्थों में विद्यमान उनके सुन्दरता, बलवन्ता एवं विविध गुणों को उन वस्तुओं एवं व्यक्तियों के मानना हमारी भूल है। वास्तविकता तो यह है कि इन सब में एक उसी अलख पुरुष की ही झलक है।

अतः भगवान का यह कथन कि संसार में जो ऐश्वर्य युक्त शोभा युक्त और बलयुक्त वस्तुएँ हैं, उस उसको तुम मेरी ही तेज (योग) के अंश से उत्पन्न हुई समझो। एक वेश्या सुन्दर स्वर में गाना गा रही थी तो उसको सुनकर एक संत मस्त हो गये कि देखो! ठाकुर जी ने कैसा कंठ दिया है कितनी सुन्दर आवाज है। वेश्या का सुरीला कंठ सुनकर संत की दृष्टि वेश्या पर नहीं वरन् भगवान की ओर गई क्योंकि कंठ में जो मधुरता एवं आकर्षण है वह तो वस्तुतः भगवान की ही देन है। किसी सुन्दर पुष्प में आकर्षण दिखाई दे सुगंधी दिखाई दे तो हमारे अन्दर उसके प्रति आसक्ति एवं भोगवृत्ति जागृत न होकर भगवान की झलक का दर्शन होना चाहिये क्योंकि शोभायुक्त, कांतियुक्त प्राणी पदार्थों के मूल में भगवान की ही सत्ता के दर्शन एवं उनके अस्तित्व का अनुभव होना चाहिये। क्योंकि कण-कण में उसी पुरुष अविनाशी की झलक समाई हुई है! भगवान अपने प्रिय भक्त अर्जुन को विशेष रहस्य की बात बतलाते हुये कहते हैं–

*अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।*

*विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥ (गी. 10/42)*

"अथवा हे अर्जुन! तुम्हें इस प्रकार बहुत सी बातें जानने की क्या आवश्यकता है? मैं इस सम्पूर्ण जगत को "अपनी योग यथा माया के (एक अंश मात्र से धारण करके स्थित हूँ। भगवान के किसी भी अंश में अनन्त सृष्टियाँ विद्यमान हैं" रोम - रोम प्रति लोग कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड"। इस प्रकार सारे संसार में सर्वत्र उन्हीं एक मात्र अलख पुरुष की झलक दिखलाई देती है। हमारी शक्ति सामर्थ्य और योग्यता भगवान के द्वारा ही हमें प्रदत्त है। भगवान पात्रानुसार शक्ति एवं सामर्थ्य प्रदान करते हैं। हमारे अन्दर उतनी शक्ति कहाँ कि हम उस पूर्ण ब्रह्म परमात्मा अलखपुरुषमूर्ति को अपनी सीमित इन्द्रियों एव बौद्धिक ज्ञान द्वारा सम्पूर्ण देख सकें किसी ने कहा है–

*अज़ब कुदरत का करिस्मा, रचाया ख़ालिक नेख़लक।*

*ख़लक में ख़लकत बसाई, रख दिया सरपै फ़लक॥*

*फ़लक पै अगिणत सितारे ग़जब की जिनमें झलक।*

*झलक जिसकी देख नहिं पाए, किये नीचे पलक॥*

अर्थात्–यह प्रकृति का अनोखा आश्चर्य है कि खालिक (भगवान ने खलकत) इस संसार को बनाया तथा खलक (संसार) में (खलकत) अनेक प्रकार की सृष्टि बनाई तथा उसके ऊपर फ़लक (आकाश) रख दिया। आकाश (फलक) में अननिगत तारे बनाकर जड़ दियें जिनमें उस परमात्मा की अनोखी झलक देखने को मिलती हैं हमारी वो शक्ति सामर्थ्य कहाँ कि ईश्वर के सौन्दर्य की झलक को सम्पूर्णता से देख सके। अतः हार मानकर हमने अपनी पलक नीची कर ली अर्थात् उस अलख पुरुष के शक्ति सौन्दर्य के सामने हम नतमस्तक होकर रह गये।'' हमारे गुरुदेव ने उस अलखपुरुषमूर्ति के वास्तविक तत्व रहस्य को हृदयांगम किया था। संसार के प्रत्येक प्राणी पदार्थ एवं घटना में उन्हें उन्हीं कृपा निधान प्रभो की झलक दिखलाई पड़ती थी। उनके समकालीन लोगों ने जो अपने संस्मरण हमें सुनाए उनसे बात पूर्ण रूपेण स्पष्ट होती है। उनके मुखार्विन्द से अलखपुरुषमूर्ति का रहस्य कई घोष निकलता और अचानक ऐसी अनोखी रहस्य-मई गहराइयों में वे खो जाया करते थे। हुजूर बाबा के अलखपुरुषमूर्ति'' की व्याख्या मैंने अपनी सीमित शक्ति सामर्थ्यानुसार श्रीमदभगवद् गीता एवं उपनिषदों के आलोक में की है लेकिन उसके वास्तविक तात्पर्य पर पहुंचने का दावा मैं कतई नहीं कर सकता, क्योंकि उनके गुरु का ज्ञान न्यारा था, जिस पर मेरे जैसा अल्पज्ञ भला कैसे पहुंच सकता है।

इस प्रस्तुत निवन्ध में मैंने उसी ''अलखपुरुषमूर्ति की जड़ चेतन में और चराचर रूप में उसी की झलक देखने का प्रयास किया है।

यहाँ तक हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि संसार में सर्वत्र उसी का नजारा दिखाई पड़ता है। चाहे कोई सुन्दर वस्तु हो चाहे अन्य कोई विशेष गुण हो वह सब उसी परमेश्वर की ही देन होती है। हमारे मन प्राण इन्द्रियों आदि अनेक देवता सभी में उसी अलखपुरुषमूर्ति की झलक दिखलाई पड़ती है। ये सभी उन्हीं को शक्ति और कृपा से अनुप्राणित प्रेरित और शक्तिमान होकर कार्यक्षम होते हैं। विश्व में जो कोई प्राणी पदार्थ शक्तिमान सुन्दर और प्रिय प्रतीत होते हैं उनके जीवन में जो असफलता दीखती है वह सभी उसी अलख पुरुष परमेश्वर की झलक मात्र से ही सम्भव होती है। उस योग्यता शक्ति या सौन्दर्य को अपना मानकर जीवन की उपलब्धियों पर जो गर्व करने लगता है उसका तुरन्त पतन होता है क्यों कि उसकी दृष्टि से परमात्मा कुछ नहीं जो कुछ शक्ति सामर्थ्य है उसे वे अपनी मानकर उससे प्राप्त सफलता को स्वयं की सफलता मानते हैं। इस सम्बन्ध में केनोपनिषद से एक सुन्दर आख्यायिका का उल्लेख करना चाहूँगा– एक बार परब्रह्म पुरुषोतम ने देवों पर कृपा करके उन्हें शक्ति प्रदान की, जिसके फलस्वरूप उन्होंने असुरों पर विजय प्राप्त कर ली। यह विजय वस्तुतः भगवान की ही थी, देवता तो केवल निमिव्त मात्र थे परन्तु विजयोन्माद में देवगण इस तथ्य को भूल गये। वे भगवान की महिमा को अपनी महिमा समझ बैठे, और अभिमानवश यह समझ बैठे कि हम बड़े भारी शक्तिशाली हैं। हमने अपने ही बल पौरुष से असुरों को पराजित किया है। देवताओं के मिथ्या अभिमान को

भगवान समझ गये। भक्त कल्याणकारी भगवन ने सोचा कि देवताओं के इस अभिमान को दूर कर इनका कल्याण करना होगा। वे उनसे कुछ दूर एक दिव्य यक्षरूप में प्रकट हो गये देवता आश्चर्य चकित होकर उस अत्यन्त अद्‌भुत विशाल रूप को देखकर विचार करने लगे कि यह दिव्य यक्ष कौन है? पर वे उसे पहिचान न सके। उन इन्द्रादि देवताओं ने अग्निदेव से कहा कि आप परम तेजस्वी हैं वेदार्थ के ज्ञाता तथा समस्त जात पदार्थों का ज्ञान रखने वाले हैं इसी से आपका नाम जातवेदा है। अतः हे जातवेदा! आप जाकर इस यक्ष का पूरा पता लगाइये कि ये कौन है। अग्नि देव को अपनी बुद्धि-शक्ति का गर्व था अतः उन्होंने कहा अच्छी बात है अभी पता लगाता हूं।'' अग्नि देवता ने सोचा इसमें कौन सी बड़ी बात है, इसलिए वे तुरन्त यक्ष के समीप जा पहुँचे। उन्हें अपने समीप खड़ा देख यक्ष ने पूछा आपःकौन हैं? (क : असि इति) अग्नि ने सोचा मेरे तेज पुज्ज स्वरूप को सभी पहिचानते हैं, इसने कैसे नहीं जाना? उन्होंने तमक कर उत्तर दिया–''मैं प्रसिद्ध अग्नि हूँ (अहम् वै अग्नि अस्मि इति) मेरा ही गौरवमय और रहस्यपूर्ण नाम जातवेदा है। अग्नि की गर्वोक्ति सुनकर ब्रह्म ने अनजान की भाँति कहा–''अच्छा! आप अग्नि देवता है और जात वेदा सब का ज्ञान रखने वाले भी आप ही हैं?'' बड़ी अच्छी बात हैं, पर यह तो बताइये कि आप में क्या शक्ति है। (त्वयि किं वीर्यम) आप क्या कर सकते हैं? इस पर अग्नि देव ने पुनः सगर्व उत्तर दिया–''अपीदं सर्वमाददीयम्, यदिदं पृथिव्यामिति''। (केन उप. 315)

अर्थात् यदि मैं चाहूँ तो पृथ्वी में यह जो कुछ भी है इस सबको जलाकर भस्म कर दूँ।'' अग्निदेव की इस गर्वोक्ति को सुनकर सबको सत्ता शक्ति देने वाले यक्षरूपी-ब्रह्म ने उनके आगे एक सूखा तिनका डालकर कहा–''आप तो सभी को जला सकते हैं तनिक सा बल लगाकर इस सूखे तिनके को (तृण) को जला दीजिये''।

अग्नि देव ने इसे अपमान समझा, वे सहज ही उस तृण के पास पहुँचे और उसे जलाना चाहा, जब नहीं जला तव उन्होंने उसे जलाने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा दी। पर उसको तनिक भी आंच न लगी वह तिनका जलता कैरो? अग्नि में जो अग्नित्व है–दाहिका शक्ति है वह तो उस शक्तिमान, शक्ति के मूल भण्डार परमात्मा से ही प्राप्त है। यदि वे उस शक्ति स्त्रोत को रोक दें तो फिर शक्ति कहाँ से आएगी। यह सब उसी अलख की झलक मात्र है। अग्नि देव इस सत्य को न समझकर ही डींगें हाँक रहे थे। पर जब उस शक्तिवान् ब्रह्म ने अपनी दी हुई शक्ति को रोक लिया तो उनसे एक छोटा सूखा तृण भी नहीं जला। उनका सिर लज्जा से झुक गया वे हत और हतप्रभ होकर चुपचाप देवताओं के पास लौट आये आकर बोले कि –''मैं तो भली-भाँति नहीं जान सका कि यह यक्ष कौन है।'' जब अग्नि देव असफल होकर लौट आये, तो देवताओं ने इस कार्य के लिए अप्रतिम शक्ति वायु देव को चुना। उनसे कहा कि वायुदेव। आप जाकर इस यक्ष का पूरा पता लगाईये। वायुदेव को भी अपनी बुद्धि शक्ति का गर्व था उन्होंने कहा–''अच्छी बात है, अभी पता

लगाता हूँ।'' वायु तुरंत उसके समीप दौड़ गये। उस यक्ष ने पूर्ववत उनसे वही प्रश्न किये। तुम कौन हो? वायुदेव ने उत्तर दिया ''मैं प्रसिद्ध वायुदेव हूँ, और मैं ही ''मातरिश्वा'' के नाम से प्रसिद्ध हूँ।'' तब यक्ष ने उससे कहा कि उक्त नाम वाले आप में क्या सामर्थ्य है। इस पर वायुदेव ने कहा–''यदि मैं चाहूँ तो इस पृथ्वी पर जो कुछ भी है इस सबको आकाश में उड़ा दूं।'' उस यक्ष ने उससे कहा कि उक्त नाम वाले आप में क्या सामर्थ्य है? इस पर वायुदेव ने कहा–''यदि मैं चाहूँ तो इस पृत्वी पर जो कुछ भी है इस सब को आकाश में उड़ा दूँ।'' उस यक्ष ने एक तिनका रखते हुए कहा कि इस तिनके को उड़ा दो। वायुदेव ने अपनी पूर्ण शक्ति लगा दी लेकिन उस तिनके को नहीं उड़ा सके क्योंकि वायुदेव को प्रदत्त अपनी शक्ति उस परब्रह्म ने खींच ली। वायु देव लज्जित होकर लौट आया और देवताओं से बोला–''कि यह दिव्य यक्ष कौन है? मैं पूरी तरह से नहीं जान सका।'' इसके वाद देवताओं ने इन्द्रदेव से कहा कि ''हेमघवन्! अग्नि और वायु जैसे अप्रतिम शक्ति एवं बुद्धि सम्पन्न देवता भी इस यक्ष का पता नहीं लगा सके है। अतः अव आप जाकर पता लगायें कि यह दिव्य यक्ष कौन है। इन्द्र बहुत अच्छा कहकर उसके पास पहुँचे भी न थे कि वह यक्ष अर्न्तध्यान हो गया। इन्द्र में सभी देवगणों से अधिक अभिमान था अतः उस यक्ष-रूपी परब्रह्म ने उससे बात तक नहीं की, परन्तु इस एक दोष के अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार से इन्द्र अधिकारी थे। अतः उन्हें ब्रह्म तत्व का ज्ञान कराना आवश्यक समझ कर उसी व्यवस्था के लिए स्वयं अन्तर्ध्यान हो गये।

यक्ष के अन्तर्धान होने के पश्चात् इन्द्रदेव वहीं खड़े रहे। अग्नि और वायु की भाँति वहाँ से लौटे नहीं इतने में ही उन्होंने देखा कि जहाँ दिव्य यक्ष था, उसी स्थान पर अत्यन्त शोभामयी हिमाचल कुमारी उमा देवी प्रकट हो गई है। इन्द्र उनके पास पहुँचे। इन्द्र पर कृपा करके करुणामय परब्रह्म ने ही उमा रूपा साक्षात् ब्रह्म-विद्या को प्रकट किया था। इन्द्र ने भक्तिपूर्वक कहा ''भगवती! आप सर्वशिरोमणि ईश्वर शंकर की स्वरूपा शक्ति हो। अतः आप कृपा करके बतलायें कि यह दिव्य यक्ष जो दर्शन देकर छुप गया, वस्तुतः कौन है और किस हेतु यहाँ प्रकट हुआ था?''

उमा देवी ने कहा–''देवराज! जिसको तुमने देखा वे स्वयं परब्रह्म थे जिनकी शक्ति से आप लोगों ने असुरों पर विजय प्राप्त की है, वस्तुतः यह विजय तुम्हारी नहीं, उन्हीं पुरुषोत्तम भगवान की है। तुमने उनकी विजय को अपनी विजय मानकर, तथा उनकी महिमा को अपनी महिमा मान लिया है यह तुम्हारा मिथ्या अभिमान है। वे परमात्मा ही तुम्हारे अभिमान को पूर्ण करने के लिए यहाँ यक्ष रूप से प्रकट हुये थे। अतः तुम अपनी स्वतंत्र शक्ति के सारे अभिमान का त्याग करके जिन ब्रह्म की महिमा से महिमान्वित और शक्तिमान् बने हो उन्हीं की महिमा समझो। संसार में जिस किसी में जो कुछ भी शक्ति सामर्थ्य एवं योग्यता दिखायी पड़ रही है उसी अलखपुरुषमूर्ति'' को झलक मात्र है। अतः यक्ष के रूप में स्वयं परब्रह्म पुरुषोत्म आप लोगों को शिक्षा देने हेतु प्रकट हुये थे। समस्त देवों में तीनों देव अग्नि, वायु

एवं इन्द्रदेव ही अन्य देवों की अपेक्षा श्रेष्ठ माने जाते हैं क्योंकि उन्होंने ही उन अत्यन्त प्रिय एवं समीपस्थ परमेश्वर को (दर्शन द्वारा) स्पर्श किया है उन्होंने ने ही ब्रह्म को सबसे पहले जाना है कि ये ब्रह्म है। अर्जित वायु की अपेक्षा इन्द्र को श्रेष्ठ माना जाता है क्योंकि उन्होंने ब्रह्म के वास्तविक रहस्य को सबसे पहले ब्रह्मविद्या'' रूपा उमादेवी से सुना और समझा। उपर्युक्त आख्यायिका से यह स्पष्ट होता है कि संसार में प्राणी पदार्थों में जो भी गुण और योग्यता है वह वस्तुतः उस प्राणी, पदार्थ को न होकर उसी अलखपुरुषमूर्ति की एक झलक मात्रा है। हमें अपनी शक्ति, सामर्थ्य एवं योग्यता को अपनी न सझते हुये उसे भगवान की ही देन मानना चाहिए। हमारे शरीर में और हमारी बुद्धि मन में जो कुछ देखने, सुनने विचार करने तथा विभिन्न प्रकार के क्रिया कलापों की शक्ति है वह हमारी नहीं उसी शक्तिमान की एक झलक मात्र है। जब इस शरीर से, वह शक्तिमान, जो अलखपुरुष के रूप में संसार में व्याप्त है, अपनी दी हुयी शक्ति खींच लेता है तो फिर यह जड़, मृतदे स्वरूप पृथ्वी पर पड़ा रहता है, आँखें खुली रहकर भी देख नहीं सकती, कान सुन नहीं सकते, हाथ, पैर हिल-डुल नहीं सकते क्योंकि इन इन्द्रियों, मन, एवं बुद्धि में जो क्रियाशीलता, मननशीलता एवं विचार करने की शक्ति है वह इन अवयवों की न होकर वस्तुतः उसी की शक्ति के एक अंश की झलक मात्र है। कैसे विद्युत के समस्त उपकरण उसी की शक्ति से अपना-अपना कार्य कर सकने में समर्थ्य होते हैं, ठीक उसी प्रकार संसार में सर्वत्र उसी की शक्ति से सारा कार्य होता है। कूलर ठण्डक दे रहा है, हीटर गमीं दे रहा है, रेडियो, टीवी, शब्द एवं चित्रों का प्रदर्शन कर रहे हैं, रेल का इंजन लाखों टन वजन को लेकर द्रुतगति से दौड़ता है, रात्रि में भी दिन जैसा प्रकाश हो रहा है, यह सब देखने से लगता है कि इन उपकरणों को ही शक्ति सामर्थ्य है। लेकिन विद्युत के चले जाने पर ये मात्र लोहपिण्ड वात् धरे के धरे रह जाते हैं तथा हमारा ध्यान उस शक्ति एवं उसके मालिक शक्तिवान की ओर जाता है उसी, की झलकमात्र से ये सब यंत्र क्रियाशील हैं।

श्री गुरुदेव बाबा जिस अलख पुरुष मूर्ति के ध्यान में भजन में डूबे रहा करते थे ये उसी अलख की झलक का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है। संसार के प्रत्येक कण में उसी अलख पुरुष की शक्ति की झलक दिखलाई पड़ती है, जिसे देख कर उसकी शक्ति सामर्थ्य का अनुमान लगाना भी कठिन है। हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रत्येक क्षण उसी उसी अलख पुरुष की शक्ति की झलक दिखलाई पड़ रही है। संसार की समस्त जड़-चेतना सृष्टि में विचार द्वारा उसकी शक्ति के दर्शन किये जा सकते हैं। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि जड़ चेतना चराचरात्मक संसार के रूप में वह अलख पुरुष स्वयं ही स्थित है तथा इस संसार में जो कुछ भी हो रहा है वह उसी की माया से है। वह परमात्मा इस जड़ शरीर को चैतन्य किये हुये है और चाहे तो इस चैतन्य शरीर को एक क्षण में जड़ बना दे, यह उसी की शक्ति का खेल मात्र है

दोहा- *जो चेतन कहँ जड़ करइ, जड़हि करहि चैतन्य।*

*अस समर्थ रघुनायकहिं, भजहि जीव ते धन्य॥ (मानस. उ. 119 ख)*

संसार में सर्वत्र उसी की शक्ति से सब कुछ हो रहा है हमें अपनी अन्दर की किसी भी शक्ति सामर्थ्य को अपनी मानकर व्यर्थ अहंकार नहीं करना चाहिये। हमारा शरीर जड़ पदार्थों का संघात् मात्र है। इसमें जो भी शक्ति है वह उसी ब्रह्म से आगत है। पत्ता एवं फूल तक उसी की सत्ता से ही हिलते एवं खिलते हैं।

*तेरी सत्ता के बिना हे प्रभु मंगल मूल।*

*पत्ता तक हिलता नहीं खिलै न कोई फूल॥*

हमारी इस दृश्य और अनात्मा माने जाने वाली देह में–जिसमें इस अविनाशी जीव का निवास है जितनी भी क्रियाएँ हो रही हैं। सब उन्हीं शक्तिमान की शक्ति के एक अंश मात्र (झलक) से ही हो रही हैं। अब हम इस देह (जिसमें हमारा विश्वास है) का संक्षिप्त विवरण तथा उसमें ब्रह्म के अंश जीव की स्थिति का वर्णन साधकों एवं पाठकों की सामान्य जानकारी हेतु प्रस्तुत करते हैं।

इस संसार में कुल चौरासी लाख योनियाँ हैं, ऐसा शास्त्र पुराण कहते हैं।

*"स्थावरं विंशतिर्लक्षं जलजं नवलक्षकम्।*

*कूर्मश्च रुद्रलक्षं च दसलक्षं च पक्षिणाम्॥*

**त्रिंशत्लक्षं पशूनां च चतुर्लक्षं च वानराः।**

**ततो मनुष्यता प्राप्तिस्ततः कर्माणि साधयेत॥**

अर्थात् इस जगत में बीस लाख वृक्षादिक नो लाख जलचर, ग्यारह लाख (उभयचर) कछुएँ, दस लाख पक्षीगण तीस लाख पशु (चौपाये) तथा चार लाख वानर इस प्रकार कुल चौरासी लाख पशु योनियाँ हैं। ये सब भोग भोगने के माध्यम (शरीर) हैं जिनमें मनुष्य योनी में किये गये शुभाशुभ कर्मों का भोग जीव भोगता है। ये चौरासी लाख तो भूलोक की ही योनियाँ हैं, स्वर्ग–नरकादि अन्य लोकों की योनियां इनसे अलग हैं। इन समस्त योनियों में शरीर धारण करके यह जीवन अनेक कर्मों का भोग भोगता है। इन योनियों में कर्म करने का अधिकार और अवसर इस जीवन को नहीं है। मनुष्य योनि इन उपर्युक्त योनियों के वाद इस जीवन को प्राप्त होती है। मनुष्य योनि (शरीर) रो ही अन्य योनियों में भोग भोगने के लिए यह जीव जाता है। मनुष्य योनि को सर्वश्रेष्ठ योनि कहा गया है। यही क्योंकि इसी से यह अविनाशी जीवन मोक्ष तक प्राप्त करता है। यहीं से वन्धन होता है और इसी मनुष्य शरीर से साधन करके जीवन मोक्ष (आवगमन, जन्म मरण से मुक्ति) प्राप्त कर सकता है–

*बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥*

*साधन धाम मोक्ष कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा।*

दोहा *सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।*

*कालहिं कर्महिं ईश्वरहिं मिथ्या दोष लगाई॥ (मानस. उ. 43)*

अर्थात्–मनुष्य शरीर बड़े भाग्य से ही प्राप्त होता है। सद् शास्त्रों में कहा गया है कि यह मनुष्य देह देवताओं को भी दुर्लभ है। क्योंकि यह साधन योनि है देव योनि में साधन नहीं हो सकता वह तो मात्र भोग योनि ही है, जिसमें मनुष्य (जीव) अपने सुकृतों का भोग भोगता है देवताओं को भी यह अभिलाषा रहती है कि यदि उन्हें मनुष्य योनि मिल जाती तो साधना के द्वारा अपने जन्म मरण के वन्धन को काट कर मुक्त हो जाते। क्योंकि मनुष्य योनि ही मोक्ष का खुला द्वार है।

*नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी।*

*ज्ञान विराग सकल गुन देनी॥*

अर्थात्-यह मनुष्य योनि अशुभ कर्म करने पर नर्कों को, शुभ कर्मों से स्वर्ग और निष्काम कर्म (भगवत् प्रीत्यार्थ) करने पर मोक्ष को प्रदान करने में सहायक है। जीवन को इसी योनि में ज्ञान वैराग्यादि शुभ गुणों की प्राप्ति होकर परम शान्ति प्राप्त होती है। ऐसी सुर दुर्लभ साधन धाम मनुष्य योनि को पाकर भी जिसने अपनी कल्याण नहीं किया वह निश्चिय ही दुःख भोगता है और माथा पीट-पीट कर ईश्वर और कर्म को झूठा दोषारोपण करता है। इस मनुष्य योनि का फल विषय भोग नहीं क्योंकि भोग भोगने के लिए तो भगवान ने दूसरी योनियों को बनाया है। यह मनुष्य कर्म करता भी है। अतः यह साधना करने के लिए ही है। भगवान श्री राम ने अपनी समस्त प्रजा के लिये एक हितकारी उपदेश में कहा है

*एहितन कर फल विषय न भाई।*

*स्वर्गउ स्वल्प अन्त दुखःदाई॥*

हे भाइयो! यह मनुष्य शरीर आपको विषय भोगने के लिए नहीं मिला है, इस संसार के विषय भोग तो क्या स्वर्ग के भोग भी सीमित (क्षणिक) तथा दुख दायी ही होते हैं क्योंकि पूण्य समाप्त हो जाने के पश्चात् स्वर्ग से वापिस इसी मृत्यु लोक में आना पड़ता है।

*ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं,*

*क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।*

अतः मनुष्य शरीर पाकर उसे विषय भोगों में लगाना समझदारी की बात नहीं घाटे का सौदा है, मूर्खता है–

*नर तन पाइ विषय मन देही। पलटि सुषा ते सठ विलषेही।*

इस प्रकार संतों-शास्त्रों एवं स्वयं भगवान ने इस मनुष्य योनि के महत्त्व का प्रतिपादन किया है। ऐसे महत्त्वपूर्ण नर देह की जावकारी हमें होना आवश्यक है। जिस घर में हम रहते हैं उसकी जानकारी हमें होती है लेकिन जिस मानव देह में हमारा (जीव) का निवास है इसकी जानकारी हमें न हो यह बात ठीक नहीं साधक को साधना से पूर्व इस देह का ज्ञान हो तो उसकी साधना निर्विध्न सम्पन्न होती है। क्योंकि इसमें कुछ आगन्तुक दोषों से भी हमारा परिचय हो जाता है। काम-क्रोध मोह आदि जो इस देह में दिखाई पड़ते हैं और जीव उन्हें अपने अन्दर मानकर उनसे प्रभावित हो जाता है, वस्तुतः इनसे जीव का कोई सम्बन्ध नहीं, ये इस जड़ देह के ही विकार मात्र हैं। अतः दृश्य एवं जड़ देह एवं स्वयं का ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है। जो इस जीव को भव वन्धन, देह बन्धन और अज्ञान के अन्धकार से मुक्त कर सकता है। हमारे गुरुदेव बाबा मनोहर दास जी महाराज ने अपने आत्म निरीक्षण द्वारा अपने को देह एवं गेह से अलग मान लिया था वे वास्तव में विदेह थे तथा इसी जीवन में उन्होंने वास्तविक मुक्ति का अनुभव कर लिया था। वे जीवन मुक्त महात्मा थे। वे संसार को समझाया करते थे कि यह शरीर नाशवान है। जैसे 'काच का शीशा एक जरा धक्के से टूट जाता उसी प्रकार इस देह का कोई पता नहीं कब समाप्त हो जाये अतः इससे साधना करके उस परमतत्व को, परम शान्ति को प्राप्त करना ही मानव देह धारण करने का सही उद्देश्य है। अपने पसंद के एक छंन्द के माध्यम से वे हमें उद्धार का मार्ग दिखलाते हुये कहा करते थे -

*ऐरे मन मेरे चल तीरथ करें, किये पातक, घनेरे,*

*तेरा तन भी छूट जायेगा।*

*चल काशी अविनाशी ते मिलादऊँ तोय,*

*चौरासी का फन्दा तुरत टूट जायेगा॥*

*आवेंगे जम के दूत पकड़ ले जाय तुझे मजबूत,*

*लुटत लुटत ऐरे बन्दे! तू भी लुट जावेगा।*

*वहती गंगा हाथ पग क्यों न पखार लेत,*

*काच का सा शीशा, फटा-फट फूट्ट जायेगा॥*

इस पद के माध्यम से मुरुदेव यह सन्देश दे गये कि ऐ मनुष्यों गत दिवस पाप कर्म में प्रवृत्त होकर क्यों अपना अहित कर रहे हो, कुछ साधना करो, यह मनुष्य देह बार-बार नहीं मिलता यह दुर्लभ किन्तु नशवर एवं क्षणभंगुर है। एक क्षण व्यर्थ खोये बिना इसके द्वारा साधना करके अपने अविनाशी स्वरूप का बोध कर लो और जन्म-मरण से मुक्त हो जाओ ज्ञान की गंगा वह रही है, वह तुम्हारे

पास ही बहती है इसमें अपने हाथ पैर पखार लो अर्थात् तत्व का वोध कर आत्म ज्ञान प्राप्त कर लो। अगर ऐसा नहीं करोगे तो पाप कर्मों के परिणाम स्वरूप यम के दूत तुम्हें नरकों में ले जाकर यातनायें देंगे तुम लुट जाओगे मनुष्य शरीर फिर नहीं मिलना। अतः साधना करो और अविनाशी से मिल जाओ इसी में तुम्हारे इस नर देह की सफलता है।

## (तीन देह) शरीरों का सामान्य परिचय तथा जीव (ब्रह्म की उसमें झलक)

देह तीन प्रकार की होती है। (1) स्थूल देह (2) सूक्ष्म देह एवं (3) कारणदेह। इन तीनों का क्रमसः संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

स्थूलदेह–स्थूल सूक्ष्म एवं कारण तीनों ही शरीरों को दृश्य एवं अनात्म (जड़) माना गया है। स्थूल देह का निर्माण पंचीकृत पंचमाहभूतों के पच्चीस तत्वों से हुआ है। यह जीवों को सुख दुःख के अनुभव कराने के लिए साधन (घर) है।

पंचमहाभूत–आकाश वायु, तेज (अग्नि) जल एवं पृथ्वी इन पाँचों के गुण शब्द, स्पर्श रूप, रस एवं गन्द उपर्युक्त पाँचों महाभूतों के पाँच-पाँच तत्व हैं–

आकाश के पाँच तत्व–काम, क्रोध, शोक, मोह, भय

वायु के पाँच तत्व–चलन, वलन, (बल खाना) धावन, एवं प्रसारण

अग्नि के पाँच तत्व–क्षुदा, तृष्णा, आलस्य, निन्द्रा, कांन्ति

जल के तत्व–शुक्र (वीर्य) रुधिर, लार, नाड़ी, त्वचा, एवं रोम

स्थूल देह के मुख्य धर्म–नाम, जाति, आश्रम, वर्ण, सम्वन्ध परिमाण (लम्बा चौड़ा ठिगना) जन्म एवं मरण जब उपर्युक्त पंच महाभूतों का आपस में मिलकर पंचीकरण हो जाता है तो स्थूलदेह का निर्माण होता है। उल्लेखर्नाय है कि पंच महाभूतों के तमोगुण भाग से ही स्थूल देह बनता है। पंच महाभूतों के पंच्चीकरण को एक उदाहरण से समझा जा सकता है। पाँच मित्र हैं पाँचों पर एक एक फल है, उन्होंने अपने-अपने फलों के पाँच टुकड़े कर लिए प्रत्येक ने अपने फल का एक टुकड़ा स्वयं रखकर शेष चारों अपने चार मित्रों को दे दिये। इस प्रकार पाँचों के पास एक भाग अपना तथा चार भाग अपने मित्रों के फलों के हुये। इस प्रकार प्रत्येक के पास अपने मित्र का तत्व आकार प्रत्येक पर पाँच-पाँच तत्व हो गये यह सब आपस में मिलकर पच्चीस तत्व हो जाते हैं। इसी को पंचीकरण की क्रिया कहते हैं यह स्थूल शरीर बिना पंचभूतों के पंचभूतों के पंच्चीकरण के नहीं बनता। यह स्थूल देह जड़ एवं दृश्य है। जन्मना, बुद्धि को प्राप्त होना तथा नाश को प्राप्त होकर मर जाना इसके सहज धर्म हैं। नाम जाति गृहस्थादि आश्रम ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्ण पिता पुत्र माता भाई आदि इसी स्थूल शसीर के ही धर्म हैं जन्म एवं मरण भी इसी का

होता है। ये धर्म सूक्ष्म एवं कारण देह में नहीं होते सिर्फ स्थूल के धर्म हैं। अज्ञानी जीव इसी को प्रायः अपना स्वरूप मान कर सुखी दुःखी अनुभव करता रहता है। इसमें जो कुछ है वह मात्र पंचभूत और इसकी पच्चीस प्रकृतियाँ ही हैं। अविनाशी जीव का इससे किंचित मात्र संम्बन्ध नहीं है, लेकिन ये बात उसे तत्वबोध के उपरांत ही मालूम होती है कि स्थूल शरीर मैं नहीं मेरा नहीं, पंच भूतों के तमोगुण भांग की रचना मात्र है।

## सूक्ष्म देह

अपंच्चीकृत पंचमहाभूतों के सत्रह तत्वों (पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रियां, पांच प्राण, मन एवं बुद्धि) का यह सूक्ष्म देह है, जो जीवों के भोग भोगने का साधन शास्त्रों एवं संतों द्वारा प्रमाणित है। अपंच्चीकृत पंच महाभूतों के सत्रह तत्व जिनसे इस लिंग शरीर का निर्माण होता है, निम्नलिखित है–

**पांच ज्ञानेन्द्रियों-**

शोत, त्वचा, चक्षु जिव्हा एवं नाक (घ्रांण) ज्ञानेन्द्रियों की रचना पंच महाभूतों के सत्व गुण से होती है। इनके माध्यम से जीवों को घांच विषयों का ज्ञान एवं भोग क्रिया सम्भव होती हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध, आदि विषयों का निर्माण पंचमहाभूतों के तमोगुण भाग से होता है।

*पांच कर्मेन्द्रियां–*

वाक (वाणी) हाथ, पैर, उपस्थ एवं गुदा इनके द्वारा बोलना चलना, लेना देना रति भोग एवं मलत्याग आदि क्रियाएं सम्भव होती हैं। कर्मेन्द्रियों का निर्माण पंचमहाभूतों के रजोगुण भाग से होता है।

**पांच प्राण–**

प्राण, अपान, समान, उदान एवं व्यायाम, इनके माध्यम से स्वांसप्रश्वांस, मलत्याग, अन्नरस, को शरीर से सर्वत्र पहुँचाना, स्वप्न आना छींक आना, आँखों का खुलना मिंचना, तथा शरीर के प्रत्येक अंग का हिलना-डुलना, जोड़ों का हिलना आदि महत्त्वपूर्ण कार्य संचालित होते हैं। पांचों प्राणों का निर्माण पंचमहाभूतों के ''रजोगुण भाग से होता है।

**मन–**

मनुष्य के अन्तःकरण में संकल्प विकल्प रूप वृत्ति को ही मन कहते हैं चित्त का समावेश भी प्रायः मन में ही मान लिया जाता है। चित्त का कार्य मन के संकल्पानुसार चित्रों का निर्माण कर उसे अन्तःकरण रूपी पर्दे पर दिखाकर जीव को भटकाना मन का निर्माण पंचभूतों के सत्वगुण भाग से होता है। कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों को उनके विषयों में क्रियाशील बनाना तथा अपने-अपने विषयों में इन्द्रियों को प्रवृत्त करना

बुद्धि–अन्तःकरण की निश्चय रूपवृति को बुद्धि कहते हैं। जिस प्रकार मन में चित्त का अन्तर्भाव मान लिया जाता है, उसी प्रकार अहंकार का बुद्धि में अन्तर्भाव मान लिया जाता है। इसकी रचना भी पंच महाभूतों के सत्व भाग से ही होती है। मन के द्वारा प्रस्तुत संकल्पों पर विचार कर निश्चय प्रदान कर इन्द्रियों सहित सम्पूर्ण शरीर को कर्म में प्रवृत्त करने का महत्त्वपूर्ण कार्य बुद्धि का ही है। उल्लेखनीय है कि कर्मेन्द्रियां एवं ज्ञानेन्द्रिया ये बाह्य करण हैं तथा मन बुद्धि चित्त एवं अहंकार ये चारों अन्तःकरण कहलाते हैं। पंच महाभूतों के सत्वांश से ज्ञानेन्द्रियां, तथा अन्तः करण का निर्माण रजोगुणांश से कर्मेन्द्रियाँ एवं पांच प्राणों का निर्माण तथा पंचमहाभूतों के ही तमो गुणांश से पांच विषयों की रचना होती है।

इस प्रकार उपर्युक्त सत्रह तत्वों से जो सूक्ष्म शरीर बनता है वह भी दृश्य एवं जड़ होतां है। जीव का उससे कुछ सम्बन्ध नहीं लेकिन अविद्यावश उसने ही इसे अपना स्वप्न मान लिया है। उसके द्वारा किये कर्मो को वह अपने ही द्वारा कृत मान उनका भोक्ता भी बन गया है। तत्व बोध (आत्म बोध) के पश्चात् इस देह का रहस्य समझ में आता है कि जिसे वह अपना स्वरूप समझता था वह तो वस्तुतः पंचमह्मभूतों के सत्रह तत्वों की रचना है, इसी को लिंग शरीर कहते हैं!

सूक्ष्म शरीर के मुख्य धर्म–लिंग देह के प्रमुख धर्म है पूण्य पाप का कर्तापन और उसके फल सुखदुखादि का भोक्तापन इस लोके से परलोक में कर्मोनुसार गमनागमन यह लिंग देह (सूक्ष्म देह) ही करता है। वैराग्य समदम आदि सात्विक वृत्तियाँ, राग द्वेष हर्षादि राजसी वृत्तियाँ तथा क्षुदा तृषा अन्धपना मन्दपना पदुपना इत्यादि इसी लिंग देह के प्रमुख धर्म हैं। ये सात्विकी रजोगुणी एवं तमोगुणी वृतियाँ एवं उनके कार्य भी इसी सूक्ष्म देह के ही धर्म हैं। जीव ने भमवश उनको अपने में आरोपित कर रखा है। अतः सूक्ष्म देह और उसकी वृत्तियाँ में नहीं, ऐसा समझने से इस देह एवं उसके विकारों से जीवनयुक्त होकर परम शान्ति को प्राप्त कर लेता है।

## कारण देह

पुरुष सुषुप्ति (गहरी निन्द्रा) से जागकर यह अनुभव करता है कि आज बड़ी गहरी नींद आई । मैंने कुछ भी नहीं जाना, नहीं जानता हूँ। ऐसे व्यवहार का हेतु आवरण विक्षेप शक्ति वाला अनादि भाव रूप अथवा स्थूल सूक्ष्म देहों का हेतू रूप अज्ञान कारण देह कहलाता है। यह भी स्थूल शरीरों की भाँति जड़ (दृश्य) है। यह स्थूल शरीर एवं सूक्ष्म शरीरों का कारण है। अतः इसे कारण देह (अज्ञान रूप) कहते हैं।

सुषृप्ति से जागकर जब यह पुरुष (जीव) कहता है कि आज बड़ी गहरी नींद आई कुछ भी नहीं जाना (अज्ञान) ऐसा अज्ञान अनुभव रूप नहीं है वरन् सुषुप्ति काल में अनुभव किये अज्ञान की स्मृतिमात्रा है। इस स्मृति का विषय सुतृप्ति काल का अज्ञान है यह अज्ञान ही कारण देह है। जागृत अवस्था में मैं ब्रह्म को नहीं जानता। मैं स्वयं को नहीं जानता इत्यादि अनुभव का विषय अज्ञान है। स्वप्न का

कारण भी निन्द्रा रूप अज्ञान ही है। उल्लेखनीय है कि जागृत अवस्था में स्थूल देह का व्यापार चौदह त्रिपुटियों से चलता है। जीव दोनों नेत्रों के पीछे स्थित होकर समस्त व्यवहार का कर्ता एवं भोक्ता होता है तथा स्वपना वस्था में जीव सुक्ष्म शरीर के माध्यम से कण्ठ स्थान में स्थित हिता नामक नाड़ी में स्थित रहकर सत्रह तत्वों के लिंग शरीर से सूक्ष्म भोग अपनी ज्ञान-शक्ति से भोगता है तथा सुषुप्ति अवस्था में जीव हृदय स्थान में पुरोतत नामक नाडी में, अविद्या ही उसके लिए सुषुप्ति रचकर तमोगुणी आनंन्द का भोग प्रदान करती है अब हम तीनों अवस्थाओं आदि का विवरण प्रस्तुत करते हैं यह जानकारी साधना हेतु आवश्यक है क्योंकि जीव को जागृत स्वप्न एवं संषुप्ति अवस्था में क्रम से आना-जाना पड़ता है।

## तीन अवस्थाएं एवं उनमें ''जीव की झलक''

प्रत्येक प्राणी मात्र को दिन रात किसी न किसी अवस्था में रहना पड़ता है दिन में व्यवहार काल में जागृत अवस्था में तथा सुषुप्ति से पूर्व कुछ समय स्वप्नावस्था में तदोपरांत जागृत के व्यवहार से थक कर उसे सुषुप्ति रूपी माँ की गोद में विश्राम करना होता है। संक्षेप में तीन अवस्थाओं का विवरण निम्न प्रकार है–

## जागृत अवस्था

जिस अवस्था में चौदह त्रिपुटी द्वारा व्यवहार होता है वह स्पष्ट प्रतीति वाली जागृत अवस्था होती है। जिन चौदह त्रिपुटियों से इस अवस्था में व्यवहार होता है, वे चौदह त्रिपुटियाँ हैं–

## पाँच ज्ञानेन्द्रियों की त्रिपुटियाँ

| इन्द्रिय (अध्यात्म) | देवता (अधिदेव) | विषय (अधिभूत) |
|---|---|---|
| (1) श्रोत | दिशा | शब्द |
| (2) त्वचा | वायु | स्पर्श |
| (3) चक्षु | सूर्य | रूप |
| (4) जिह्वा | वरूण | रस |
| (5) घ्रांण | अश्रनीकुमार | गन्ध |

## कमेन्द्रियों की त्रिपुटी

| | | |
|---|---|---|
| (6) वाक | अग्नि | बचन क्रिया |
| (7) हस्त | इन्द्र | लेन-देन क्रिया |
| (8) पाद | वामन | चलना |

| | | |
|---|---|---|
| (9) उपस्थ | प्रजापति | रति भोग |
| (10) गुदा | यमराज | मल त्याग |

## अन्तः करण की त्रिपुटी

| | | |
|---|---|---|
| (11) मन | चन्द्रमा | संकल्प विकल्प |
| (12) बुद्धि | ब्रह्मा | निश्चय (विचार) |
| (13) चित्त | वासुदेव | चिन्तन |
| (14) अहंकार | रूद्र | अहंपना (अस्ति) |

वे चौदह त्रिपुटियाँ जागृत अवस्था में जीव के कर्म व व्यवहार एवं भोग व्यवहार में सहायक होती। ध्यातव्य है कि उपर्युक्त त्रिपुटियों में से एक भी अंग नहीं हो तो उस इन्द्रिय (करण) का व्यवहार नहीं चल सकता। अतः इन्द्रिय उसका देवता तथा विषय की उपस्थिति होने पर ही तत्सम्बन्धी व्यवहार सम्भव होता है। उदाहरण के लिए आँख हो और विषय (दृश्य) हो लेकिन सूर्य (देवता) न हो तो दृश्य व्यवहार क्रिया सम्भव नहीं होगी ठीक इसी प्रकार सभी को समझ लेना चाहिये। राम चरित मानस एवं अन्य पुराण शास्त्रों में भी भगवान के विराट स्वरूप वर्णन में इन देवताओं और करण त्रिपुटियों का संकेत दिया गया है।

*अहंकार सिव बुद्धि अज, मन ससि चित्त महान।*

*मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान॥ (लंका. 15)*

अर्थात्– शिव जिनका अहंकार है ब्रह्मा बुद्धि है चन्द्रमा मन है, और महान (विष्णु) ही चित्त है उन्हीं चराचर रूप भगवान ने मनुष्य रूप में निवास किया है। यहाँ पर उपर्युक्त तथ्यों के प्रदर्शन का यही ध्येय है कि वह "अलखपुरुषमूर्ति जो चराचर में व्याप्त है इस मनुष्य देह में भी उसी की झलक स्पष्ट दृष्टि गोचर हो रही है। पाताल उनके चरण हैं ब्रह्म लोक सिर है, अन्य बीच के लोकों की स्थिति जिनके भिन्न-भिन्न अंगों पर है। भयंकर काल जिनका भृकुटि संचालन (भौहों का चलना) सूर्य नेत्र हैं। बादलों का समूह उनके बाल हैं आश्विनी कुमार जिनकी नासिका है पलकों को खोलना दिन है, पलकों को मींचना रात्रि है, दसों दिशाएं उनके कान हैं इस प्रकार वेदों ने निरूपित किया है। वायु श्वांस है, वेद जिनकी वाणी है। उनका अधर (ओठ) लोभ है, भयानक दाँत यमराज हैं। भगवान की हँसी ही माया है दिक्पाल उनकी भुजाएँ हैं अग्नि मुख (वाणीं) है वरूण जीभ (जिह्वा) है उत्पति पालन एवं संहार उनकी क्रियाएँ हैं, अठारह प्रकार की असंख्य वन स्मृतियाँ भगवान की रोमावलि हैं। पर्वत अस्थियाँ हैं, नदियाँ उनकी नसों का जाल है। समुद्र पेट है, और नरक भगवान की नीचे की इंद्रियाँ हैं। इस प्रकार वे प्रभु विश्वमय हैं। राम चरित मानस लंका काण्ड के दोहे संख्या 14 से 15 तक भगवान के विश्वमय का

वर्णन पटनीय हैं, मनुष्य शरीर उस विराट ब्रह्माण्ड का ही छोटा रूप है जो विराट ब्रह्माण्ड में है सोई इस पिण्ड में भी हैं। अतः उसी अलख पुरुष की झलक दर्शनार्थ उपर्युक्त विवरण दिया गया है। अतः जागृत अवस्थाओं में उपर्युक्त चौदहों त्रिपुटियों से व्यवहार होता है इनमें देवताओं के रूप में उसी अलख पुरुष की सत्ता की झलक दिखलाई देती है, बिना उनके इस शरीर का न तो अस्तित्व है और न उसके द्वारा व्यवहार सम्मव है।

## जागृत अवस्था में जीव का नाम

स्थान नेत्रों में, वाचा बैखरी भोग स्थूल, शक्ति, क्रिया, और गुण रजोगुण होता है। जागृत अवस्था में जीव का नाम ''विश्व'' होता है

## स्वप्नावस्था

इस जन्म को अथवा पूर्व जन्म की जागृत अवस्था में देखें सुने और भोगे हुए भोगों पदार्थों एवं घटनाओं के संस्कार कंठ में रहने वाली बाल के हजारवें भाग से भी सूक्ष्म आकार वाली ''हिता'' नामक नाड़ी में संचित रहते हैं। उन संस्कारों से ही निद्राकाल में प्रतिभासिक सत्ता वाले पाँच विषय आदि पदार्थ और उनके ज्ञान उत्पन्न होते हैं। इन दोनों से जिसमें व्यवहार होता है वह सूक्ष्म शरीर की क्रिया व्यवहार स्थली स्वपन्नावस्था है। जीव प्रारब्धवश जागृत अवस्था में दसों इन्द्रियों तथा अन्तःकरण मन बुद्धि एवं चिन्त अंहकार के द्वारा अपने क्रिया व्यापार में प्रवृत होता है तथा स्थूल भोग रूप आनंद (विषयानंद) को प्राप्त करता है, तत्पश्चात् श्रम को प्राप्त कर उस स्थूल क्रिया व्यापार से विरक्त होकर स्वप्नावस्था को प्राप्त होता है। स्वप्नावस्था में राजा रूपी जीव अपने दलवल को एक सीमा तक छोड़कर स्वप्नावस्था रूपी चित्र शाला में अपने मंत्री मन और अपनी प्रिया रानी (बुद्धि) को साथ लेकर मन को विविध सूक्ष्म भोग रूप सामग्री एवं विविध सृष्टि हेतु प्रेरित करता है। मन सूक्ष्म इन्द्रियों के सहयोग से विविध प्रकार के सुख दुःख कारक विविध दृश्यों एवं भोगों की रचना करता है। ये भोग एवं दृश्य जागृत अवस्था से प्राप्त भोगों से भिन्न होते हैं। जिन मनोकामनाओं की पूर्ति जीव जागृत अवस्था में नहीं कर सकता है उनकी प्राप्ति उसे इस स्वप्नावस्ता में हो जाया करती है, यहाँ के भोग सूक्ष्म और जागृत अवस्था से भिन्नता लिए होते हैं। स्वप्नावस्था में जीवन की स्थिति एवं भोग व्यवहार निम्न प्रकार हैं–

| स्थान | वाचा (वाणी) | भोग | शक्ति | गुण | नाम |
|---|---|---|---|---|---|
| कण्ठ में | मध्यमा | सूक्ष्म | ज्ञान | सत्वगुण | तैजस |

हिता नामक नाड़ी में यह जीव अन्तः करण सहित निवास करता है। अन्तः करण (मन, बुद्धि, चिन्त, अहंकार) स्वप्न रचियता है तथा जीव भोक्ता होता है।

## सुषप्ति अवस्था

जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है जीव गहरी निद्रा से जाग कर जागृत अवस्था में आता है तो उसे सिर्फ निद्रा सुख की स्मृति मात्र होती है उसे और कुछ पता नहीं रहता वह पूर्ण अज्ञान वाली सुषुप्ति अवस्था है। जीव कारण (अज्ञान रूप) शरीर से इस अवस्था के आनंद का भोग करता है। सुख और अज्ञान का प्रकाश (ज्ञान) साक्षी चेतन रूप अनुभव जिसमें होता है ऐसी बुद्धि को विलयावस्था सुषुप्ति अवस्था कहलाती है। सुषुप्ति अवस्था में जीव का–

| स्थान | वाचा (वाणी) | भोग | शक्ति | गुण | नाम |
|---|---|---|---|---|---|
| हृदय में | पश्चंन्ति | आनंद | द्रव्य | तमः | प्राज्ञ |

स्वप्नावस्था एक जागृतवस्था में ''जीव-के साथ इन्द्रियां, मन, प्राण एवं बुद्धि होती है। लेकिन सुषुप्ति में बुद्धि को भी विलयावस्ता होती है। इसे निम्न व उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है।

जैसे कोई बालक अपने मित्रों के बुलाने पर उनके साथ खेलने मैदान में जावे। विविध प्रकार के खेलों को खेलने के पश्चात् श्रम (थकावट) को पाकर अपने घर आकर अपनी माँ की गोद में सो जावे। उसी प्रकार कारण शरीर अज्ञान रूपी माता है, उसका बुद्धिरूप बालक प्रारब्धकर्मरूप साथियों के साथ जागृत एवं स्वप्नावस्था रूपी खेल के मैदान में इन्द्रिय व्यवहार रूपी विविध भोगों को भोगने रूपी खेल खेलता है। तत्पश्चात् विक्षेप रूपी श्रम को पाकर सुषुप्ति रूप गृह में अविद्या (अज्ञान) रुपी माता में लीन होकर ब्रह्मानंन्द का अनुभव करता है। पुनः प्रारब्ध रूप कार्यरूपी अपने दोस्तों के बुलाने पर जागृत स्वप्न रूप मैदान में व्यवहार रूपी खेल खेलने चला जाता है। जैसे समुद्र जल से भरा हुआ कोई घट (लिंगदेह) गले में रस्सी (अदृष्टरूपी रस्सी) बाँधकर समुद्र में डुबोया जावे (सुषुप्ति काल में तथा उसके आवन्तर भेद रूप, मरण, मूर्च्छा तथा प्रलयकाल) अर्थात (समष्टि अज्ञान रूप ईश्वर की उपाधिमाया में लीन होता है) तब घट में स्थित जल, समुद्र के जल से एकता को प्राप्त होता (व्यष्टि रूप अज्ञान जीव की उपधि अविद्या, समष्टि अज्ञान से एकता को प्राप्त होता है) तो भी घट रूप उपाधि से भिन्न की भांति अलग भासता है (तो भी लिंग शरीर के संस्कार रूप उपाधि के कारण अलग अस्तित्व वाला दिखाई देता है) फिर रस्सी के खींचने पर घट समुद्र से अलग दिखलाई पड़ता है (अन्तर्यामी की प्रेरणा से या प्रारब्धकर्म की प्रेरणा से पुनः सुषुप्ति को त्याग जागृत व स्वप्नावस्था में अलग से दिखाई पड़ता है) परन्तु जल सहित घड़े का आकाश और समुद्र का आधार आकाश भिन्न नहीं होते (व्यष्टि अज्ञानरूप जल सहित लिंग देह रूपी घट का साक्षी चेतन और समष्टि अज्ञानरूप समुद्र का आधार चिदाकाश (ब्रह्मचेतन) दोनों अलग नहीं होते ये तीनों कालों में एक रस ही हैं। इस

प्रकार साक्षी चेतन रूप जीव एवं चिदाकाश रूप ब्रह्म चेतन दोनों अलग-अलग न होकर दोनों को एकता सिद्ध होती है। उल्लेखनीय है कि प्राणी जब सुषुप्ति रूपी अज्ञान (अविद्या) रूपी महल में प्रवेश कर विश्राम कर रहा होता है तो स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर रूपी रथ की प्राण पहरेदारी करता है, इस देहरूपी रथ के दस घोड़े इन्द्रियाँ हैं तथा बुद्धि सारथी है। ये भी विश्राम को प्राप्त होकर अपने-अपने क्रिया व्यवहार से रहित हो जाते हैं। पुनः प्रारब्धकर्मरूप अदृष्ट की प्रेरणा से नींवरूपी रथो पुनः महल (सुषुप्ति) से बाहर आता है। उसके आते ही दुद्धि रूप सारथी देहरूपी रथ को तैयार कर उसे जागृत स्वप्न रूप क्षेत्र में लेकर आ जाता हैं। इस प्रकार जीव रूप राजा अपने दल बल सहित व्यवहार रूप मैदान में विविध विषयों के भोगों को भोगने व क्रिया व्यापार में संलग्न होता है। थक जाने पर पुनः अपने रथ और सारथी (स्थूलसूक्ष्मदेह युक्त मन बुद्धि तथा इन्द्रियों) को बाहर ही छोड़ सुषुप्ति रूपी महल में अज्ञान (अविद्या) रूपी माता की गोद में विश्राम करता (आनन्द भोगता) है। इस प्रकार हमने देखा कि स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण तीनों दोहों में उसी अलख पुरुष (ब्रह्म-चेतन) को ही झलक दिखलाई पड़ती है, विना उसके ये तीनों शरीर जड़ (अक्रिय) एवं चेतनाहीन दिखलाई पड़ते हैं इस अलख की ''झलक'' से ही इन जागृत स्वप्न एवं सुषुप्ति अवस्थाओं का अस्तित्व है। वस्तुतः ये तीन अवस्थाएं तथा तीन देह, इस जीव की नहीं, जीव इनका साक्षी (दृष्टा) है, जो जिसको जानता है वह उससे न्यारा होता है। अतः हमें यह जानना चाहिये कि जागृत स्वप्न एवं सुषुप्ति आदि तीन अवस्थाएँ एवं स्थूल सूक्ष्म एवं कारण देह मेरे नहीं, मैं नहीं वरन् पंचतत्वों की रचना मात्र जड़ एवं दृश्य है।

## ''आप'' में ''आप'' की झलक

उपर्युक्त विवरण इस जीव द्वारा अज्ञान से अपने माने जाने वाले तीन दोहों एवं तीन अवस्थानों का है। अब जरा अपने स्वरूप की कुछ बात हो जाये। वैसे तो यह सब कहानी अकथ है, समझते तो बनती है, पर कहने में नहीं आती।

*''सुनहु तात यह अकथ कहानी।*

*समुझत बनइ न जात बखानी॥*

*ईश्वर अंस जीव अविनासी।*

*चेत अमल सहज सुख रासी॥*

इस चेतन अमल और सहजसुख की राशि जीव एवं उसके अंशी ब्रह्म के भेद को निम्न प्रकार कहा गया।

## चैतन्य

चैतन्य दो प्रकार का होता है। (1) सामान्य चैतन्य और विशेष चैतन्य।

सामान्य चैतन्य–(ब्रह्म) जो आकाश की भाँति सर्वत्र परिपूर्ण (व्याप्त) है तथा संसार के समस्त नामों एवं रूपों का आधार (अधिष्ठान) एवं आश्रय है तथा अस्ति (है) भाति (चित, प्रकाशक) तथा प्रिय (आनंद) रूप है एवं निर्विकार है उसे सामान्य चेतन (ब्रह्म) कहते हैं. संसार के समस्त पदार्थों में (1) अस्ति (सत्) भांति (चित), प्रिय (आनन्द) नाम एवं रूप ये पाँच अंश होते हैं उपर्युक्त पांचों ब्रह्म में कल्पित हैं। सामान्य चेतन सबसे अधिक सूक्ष्म एवं व्यापक होता क्योंकि जो, जो कारण हैं वे अपने कार्यों से सूक्ष्म एवं व्यापक होते हैं तथा कार्य अपने कारण की अपेक्षा स्थूल एवं परिच्छिन्न (सीमित) होता है। ब्रह्म सब का कारण है अतः वह सबसे अधिक सूक्ष्म एवं व्यापक (व्याप्त) दूसरे कारण अपने कार्य में सर्वत्र सूक्ष्म रूप से व्याप्त रहते हैं। अतः इस सिद्धान्तानुसार सामान्य चैतन्य (ब्रह्म) अत्यन्त सूक्ष्म एवं व्यापक है। उदाहरण के लिए जल पृथ्वी के सूक्ष्म एवं व्यापक (सर्वत्र विद्यमान) है तथा जल की अपेक्षा अग्नि सूक्ष्म एवं व्यापक है, तेज से वायु सूक्ष्म एवं व्यापक है, वायु की अपेक्षा आकाश सूक्ष्म सर्वत्र व्याप्त है। आकाश की अपेक्षा अज्ञान सूक्ष्म एवं व्यापक होता है, तथा अज्ञान से व्रह्म चेतन सूक्ष्म एवं व्यापक है। इस प्रकार प्रत्येक कारण अपने कार्य से सूक्ष्म एवं व्यापक होता है। चूंकि व्रह्म सव का कारण है अतः सर्वत्र व्यापक है और और सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हैं। ''अज्ञान मन से ग्रहण नहीं किया जा सकता किन्तु मैं नहीं जानता इस अनुभव रूप से उसका अनुमान किया जाता है। किन्तु ब्रह्म चेतन स्वयं प्रकाश होने के कारण किसी भी प्रमाण का विषय नहीं है। शरीर में काले तिल की भाँति अज्ञान ब्रह्म के एक देश (स्थान) में स्थित है, अगर अवशेष ब्रह्म शुद्ध एवं स्व प्रकाश है।

## विशेष चेतन ''जीव''

विवेकी पुरुष सामान्य चेतन को ही सत्य कहते हैं, तया जो विशेष चेतन (जीव) है वह भ्रांति स्वरूप कल्पित एवं जन्म मरण का आश्रय है। अन्तःकरण (वुद्धि आदि) एवं उसकी वृत्तियों में सामान्य चेतन्य (ब्रह्म) का प्रतिविम्व रूप चिदामास ही विशेष चेतन है। जैसे जल में, दर्पण में सूर्य का प्रतिबिम्व दिखाई देता है, वह (सूर्य का विशेष) छाया, प्रतिविम्ब) रूप है उसे विवेकी पुरुष नित्था कहते हैं। ठीक इस प्रकार बुद्धि में परमात्मा को जो प्रतिबिम्ब भासता है वही विशेष चेतन (जीव रूपी) है। यह विशेष चेतन ही लिंग देह धारण कर लोक परलोक में आता-जाता है। स्थूल सूक्ष्म देहों को अपना स्वरूप मान प्रकृति से होने वाले उनके समस्त कार्यों को अपने द्वारा कृत मात्र उनके परिणामों सुख दुखादि को भोगने यत्र-तत्र ऊपर (देवादि) नीचे सरीसृपादि तथा मृत्य लोक की विभिन्न योनियों से भट्कता रहता है। यह सब क्रिया आवागमन आदि चेतन (ब्रह्म) का प्रतिबिम्ब ही करता है। शुद्ध सामान्य चेतन (ब्रह्म) में आना जाना एवं कृतित्व भोगत्व नहीं होता। चिदामास चैतन्य (ब्रह्म) के लक्षणों से रहित, अर्थात् सर्वत्र व्यापक, निर्विकार आदि लक्षणों से रहित है मात्र चैतन्य की भांति भासता हो उसे 'चिदाभास' कहते हैं। 'चिदाभास' को विशेष चैतन्य

कहने का तात्पर्य यह है कि अल्प देश अल्प काल वाला होता है, जो वस्तु अल्प देश (सीमित क्षेत्र) और अल्प काल (क्षणिक कुछ समय के लिए) होती है, उसे विशेष कहते हैं। चिदाभास, अन्तः करण देश और जाग्रत स्वप्न एवं अज्ञान काल में होता है, इसलिए इसे विशेष चेतन (जीव) कहते हैं विशेष चेतन (जीव) उस अलखपुरुषमूर्ति सामान्य चेतन ब्रह्म की झलक (परिछाई मात्र) होता है। अब यह प्रश्न किया जा सकता है कि वह ब्रह्म जीव की भांति वोलता चलता होता जागता दिखाई क्यों नहीं देता, इसकी भाँति व्यवहार क्यों नहीं करता? जैसे सूर्य सर्वत्र है किन्तु उसका प्रतिबिम्ब सर्वत्र नहीं होता जहाँ दर्पण, या जल रूप उपाधि है वहीं उसका प्रतिबिम्ब दिखाई देता है, सूर्य का प्रकाश सर्वत्र है लेकिन वस्तुओं को नहीं जलाता लेकिन जहाँ सूर्य कांतिमयी होती है वहाँ अग्नि रूप विशेष रूप धारण कर वस्तुओं को जलाने में समर्थ होता है। सामान्य रूप सर्वदा एक रस ज्यों का त्यों विद्यमान रहता है तथा बहुकाल स्थाई रहता है लेकिन जो उपाधि (अन्तः करण) से चिदाभास रूप विशेष भासता है वह अल्प देश एवं अल्प काल वाला होता है। हमारे गुरु देव बाबा श्री श्री 1008 श्री मनोहरदास जी महाराज ने उस ब्रह्म के सामान्य रूप को जानकर, देहरूप में प्रकट (जीवरूप विशेष चेतन) जो मिथ्या एवं कल्पित है मान, ज्ञान के द्वारा उसकी असारता को पहिचान, अपने को उस ब्रह्म के साथ एकाकार अनुभवकार लिया था। उनका अलखपुरुषमूर्ति'' सर्वत्र व्याप्त निराकार निर्विकार एवं अन्तर्यामी था। उसी की झलक प्रतिबिम्ब रूप से चराचरात्मक जगत में भासती है जिस प्रकार महान् समुद्र में उसी सूर्य का प्रतिविम्ब होता है वही एक जल के छोटे से छोटे पात्र में भी है, संसार में सभी छोटे बड़े जीवों के अन्तः करणों में उसी का प्रतिबिम्ब है। अतः समस्त बीच जगत उसी के अंश से क्रियाशील है।

इस प्रकार अस्ति (सत्) भाति (चित्त) एवं प्रिय (आनन्दः रूप ब्रह्म सामान्य चेतन है लेकिन उससे वोलना, चालना आदि विशेष व्यवहार नहीं होता। जहाँ अन्तः करण रूप उपाधि होती है, वहीं चिदाभास रूप से विशेष चैतन्य होकर, बोलना, चालना, कर्तापना, भोक्तापना, परलोक गमनागम क्रिया, इत्यादि विशेष व्यवहार देखने में आते हैं। लेकिन यह सव कुछ सत्य नहीं, आभास एवं भ्रम मात्र होता है। अतः सामान्य चैतन्य ब्रह्म ही सत्य है तथा चिदाभास रूप से उपाधि करके भासने वाला, चिदाभास मिथ्या, तथा उसके द्वारा होने वाली समस्त क्रियाएँ भी वस्तुतः सत्य नहीं लेकिन अज्ञान से सत्य सी प्रतीत हो रही है। जब भी गुरुदेव की कृपा से यह अज्ञानान्धकार दूर होगा तभी अपना वास्तविक, (शुद्ध चैतन्य) रूप स्पष्ट होकर संसार को, संसार व्यवहार को, सत्य मानकर सुखी दुःखी होना रूप अज्ञान, दूर हो जावेगा इसी अज्ञान (अविद्या) के कारण हम अपने वास्तविक रूप को भूल गये हैं–

*झूठेउ सत्य जाहि बिनु जानें।*

*जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचानें॥*

*जेहि जाने जग जाइ हेराई।*

*जागे तथा सपना भ्रम जाई॥*

अर्थात–जिस (अलखपुरुषमूर्ति) के यथार्थ ज्ञान के अभाव में यह झूठा (अस्तित्व होना) संसार सत्य सा प्रतीत हो रहा है जैसे बिना पहिचाने रस्सी में सर्प का भ्रम हो जाता है तथा तत्व का यथार्थ बोध हो जाने (क्षेत्र क्षेत्रज्ञपन बोध) के पश्चात् इस झूठे संसार का उसी प्रकार लोप हो जाता है जिस प्रकार जागने के पश्चात् स्वप्न का भ्रम नष्ट हो जाता है। कहने का मूल भाव यह है कि यह चराचर जगत जैसा दिखलाई दे रहा है यथार्थ में वैसा नहीं क्यों कि यह सदा एक रस नहीं रहता तथा क्षणभंगुर एवं नाशवान कहा जाता है, इसमें जो सत्यत्व एवं स्थायित्व दृष्टि गोचर हो रहा है वह उसी परमात्मा को झलक मात्र से है क्योंकि वह चेतन को जड़ एवं जड़ को चेतन बनाने की शक्ति सामर्थ्य रखता हैं।

*जो चेतन कहँ जड़ करहिं,*

*जड़हिं करहिं चैतन्य,*

*अस समर्थ रघुनाथकहि,*

*भजहिं जीव सो धन्य॥*

जैसा कि हमने तीन दोहों और तीन अवस्थाओं में उसी अविनाशी परमात्मा की झलक का दर्शन किया और यह पाया कि उन तीनों (स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण) देहों में उसी अलखपुरुषमूर्ति की झलक रूप जीव ही अपनी क्रियाएँ किये हुए उसे अज्ञानवश अपना स्वरूप मान बैठता है यही अज्ञान उसका जीवत्व है तथा वही जागृत एवं स्वप्न सुषुप्ति आदि अवस्थाओं को अपनी मानकर उनमें विविध भोगों और क्रियाओं को भी अपनी (निजकृत) मानकर उनके फलों के भोक्ता रूप में ऊपर नीचे विविध चौरासी लाख योनियों में भटकता रहता है। वह माया की प्रेरणा से कालानुसार कर्म में प्रवृत होकर अपने स्वभाव का निर्धारक बन बैठता है। जबकि वास्तविकता कुछ और ही है भगवान श्रीकृष्ण इस सम्बन्ध में कहते हैं।

*यथा सर्वगत सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।*

*सर्वत्रावस्थितों देहे तथात्मा नोपलिप्यते॥ (गीता. 13/32)*

अर्थात–जिस प्रकार सर्वत्र व्याप्त हुआ भी आकाश सूक्ष्म होने के कारण लिपायमान नहीं होता, वैसे ही सर्वत्र देह में स्थित हुआ भी आत्मा (त्रिगुणातीत होने के कारण) देह के गुणों से लिपायमान नहीं होता।

अतः जीव के ये तीनों देह प्राकृतिक हैं, जड़ हैं, अनित्य हैं, परमात्मा का प्रकाश (भास) पड़ने के कारण उसमें उनका प्रतिबिम्ब पड़ता आभासित होता है

उसके उस आलोक से ही तीनों देह एवं समस्त अवस्थाएं प्रकाशित होती हैं, वह उन शरीरों में स्थित होकर भी उनके कोई सम्बन्ध नहीं रखता क्योंकि वह निर्गुणतत्व है, वह चेतन है। शरीर जड़ है। शरीर विनाशी है वह विनाशी है। अतः किसी भी प्रकार से यह जड़ वर्ग उस चिदानन्द भगवान की संगत के योग्य नहीं।

*अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः।*

*शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते॥ (गी. 13/31)*

भगवान कहते हैं कि "हे अर्जुन! अनादि होने और गुणातीत होने से यह अविनाशी परमात्मा शरीर में स्थित हुआ भी वास्तव में न कुछ करता है और न लिपायमान होता है। लेकिन अविद्यावश जब उनका अंश यह अविनाशी जीव जब प्रकृतिस्थ हो जाता है अर्थात प्रकृति के कार्य इस नाशवान क्षण भंगुर अशान्ति कारक इस शरीर को अपना स्वरूप मान बैठता है और प्रकृति (शरीर इन्द्रयों, मन बुद्धि) द्वारा होने वाले कार्यों को अपने द्वारा किये मानने लगता है साथ ही उन कर्मों का भोक्ता भी बन बैठता है। जो निर्गुण निराकार था, उसने गुणों का संग किया अपने को साकार (देहरूप) मान लिया उसे कर्मों के भोगार्थ ऊपर-नीचे की विविध योनियों में आना-जाना पड़ता है। यह सब उसके प्रकतिस्थ होने का ही परिणाम होता है–

*पुरुषः प्रकृतिस्थो हिभुङक्ते प्रकृतिजान्गुणान्।*

*कारणं गुण संगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु॥ (गी. 13/21)*

अर्थात प्रकृति में (भगवान की त्रिगुणमयी माया में) स्थित हुआ ही पुरुष (जीव) प्रकृति से उत्पन्न हुये त्रिगुणात्मक सब पदार्थों (पांबधियों) को भोगता है और इन गुणों का संग ही इस जीवात्मा के अच्छी बुरी योनियों में जन्म लेने का कारण है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि यह आत्मा इस शरीर से बिल्कुल असंग होती है, इन प्राकृतिक तत्वों इन्द्रियों, विषयों, मन एवं उसके संकल्पों, वुद्धि एवं उसके भले-बुरे विचारों का दृष्टा मात्र होता है। वस्तुतः यह प्रकृति से सर्वथा न्यारा होता है। इस पुरुष (आत्मा) की शरीर में कितने रूपों में "झलक" दिखलाई पड़ती है उसका सुन्दर उदाहरण भगवान इस श्लोक में देते हुये कहते हैं–

*उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः*

*परमात्मेति चाप्युक्तो देहे अस्मिन् पुरुषः परः॥ (गी. 13/22)*

इस श्लोक में एक ही तत्व (आत्मा) को भिन्न-भिन्न उपाधियों के सम्बन्ध से अपदृष्टा, अनुमन्ता, भर्ता, भोक्ता एवं महेश्वर आदि पांच सम्बन्धों वाला बतलाया गया है। उस एक ही निर्विकार निर्लिप्त (अलखपुरुषमूर्ति) की यहां पांच प्रकार की झलक प्रस्तुत की गई है। हम संक्षेप में इनकी जानकारी लेते हैं क्योंकि यह हमारा (जीवमात्र का) निजी मामला है। अतः समझ लेना भी आवश्यक समझते हैं–

उपदृष्टा कैसे?– यह पुरुष (अलखपुरुषआत्मा) स्वरूप से नित्य है सब जगह परिपूर्ण (व्याप्त) है, अचल है, तथा सदा रहने वाला है। ऐसा होते हुए भी जब यह प्रकृति एवं उसके कार्यों (शरीरों) की ओर दृष्टि डालता है, अर्थात् उनके साथ अपना सम्बन्ध मान लेता है, तब ही इसकी उपदृष्टा संज्ञा हो जाती है।

अनुमन्ता कैसे?–इन्द्रियों, मन, एवं बुद्धि के सहयोग से विविध प्राकृतिक कार्य (कर्म एवं भोग) सम्पादित होते हैं, प्रत्येक कार्य करने में यह सम्मति, एवं अनुमति देने वाला होता है, बिना इसकी सम्मति एवं अनुमति के सुभाशुभ कार्य सम्पादित नहीं हो सकते, अतः यह अनुमन्ता कहा जाता है।

भर्ता कैसे?–एक व्यष्टि शरीर के साथ एकात्म होकर यह अन्न जल एवं अन्य प्रकार के पदार्थो से यह उस (शरीर) का पालन-पोषण करता है, उसके अस्वस्थ होने पर औषधि आदि के द्वारा उसे नीरोग प्रदान करता है, शीत उष्ण आदि प्राकृतिक प्रकोपों से उसे सुरक्षित कर उसका (शरीर का) संरक्षण करता है। अतः इस सम्बन्ध से यह उसका भर्ता (भरतार) होता है।

भोक्ता कैसे?– यही अविनाशी कुटस्थ (अलख पुरुष मूर्ति) शरीर के साथ (मिलकर प्रकृतिस्थ होकर) अनुकूल परिस्थिति के आने से अपने को सुखी एवं प्रतिकूल परिस्थिति अपने पर अपने को दुःखी मानने लगता है। अतः भोक्ता कहा जाता है यहाँ उल्लेखनीय तथ्य यह है कि आत्मा निर्विकारी होने से सुखी अथवा दुःखी नहीं होती वह सदा एक रस आनंदस्वरूप होकर स्थित रहती है, अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थिति, वस्तुओं, व्यक्तियों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं एवं प्रकृति जड़ होने के कारण कभी सुखी-दुःखी नहीं होती, कहने का तात्पर्य यह है कि प्रकृति में भोक्तापन नहीं एवं शुद्ध ब्रह्म'' में भी भोकतृत्व कर्तृत्व नहीं केवल ब्रह्म का वह अंश (चेतन) जो पड़ प्रकृति (बुद्धि के संसर्ग से जीव) (अहंरूप) धारण कर प्रकृतिस्थ हो जाता है, वही कर्ता भोक्ता बन जाता है। यह चिंद्जड़ ग्रन्थि (जीवत्व) जो वस्तुतः मानी डुई है, वास्तविक नहीं, उसी में यह कर्त्तत्व एवं भोक्तृत्व भाव पैदा होता है।

महेश्वर कैसे हुआ?–यह अपने को शरीर, मनवुद्धि तथा शरीर से सम्बन्ध रखने वाले समस्त प्राणी पदार्थ (सम्पत्ति) योग्यता आदि का स्वामी मानने लगता है अतः यह महेश्वर नाम से कहा गया है।

भगवान आधे श्लोक में पुनः कहते हैं–

*परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः।*

अर्थात् यह अविनाशी परमात्मा देह में रहता हुआ भी देह से परे (सम्बन्ध रहित है) पुरुष सर्वोत्कृष्ट है, परमात्मा है इसलिए शास्त्रों में इसको परमात्मा कहा गया है। भगवान ने अपने स्वरूप कथन में कहा है–

*यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः*

*अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तम॥*

(गी. 15/18)

अर्थात् में क्षर (नाशवान जड़वर्ग) से सर्वथा अतीत (न्यारा) हूँ और अक्षर (माया में स्थित जीव) से भी उत्तम (शुद्ध ब्रह्म) हूँ। अतः लोक में और वेदों में पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूँ। यह आत्मा देह में रहती हुई भी देह के सम्बन्धों से रहित है यह न कुछ कर्ता है न भोक्ता है। उपर्युक्त विवेचन में यह बात स्पष्ट हो रही है कि एक ही आत्मा विविध सम्बन्ध (कार्यों) के संसर्ग से विविध रूपों–

(उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।). . . . .में प्रकट दिखाई देता है। जैसे एक ही व्यक्ति देशकाल, वेश, कार्य एवं सम्बन्ध आदि से पिता चाचा, भाई नाना तथा गुरु-शिष्य, विद्वान मूर्ख आदि नामों से पुकारा जाता है, लेकिन वह अलग-अलग न होकर एक ही होता है। इसी प्रकार एक ही आत्मा उपद्रष्टा अनुमन्ता भर्ता, भोक्ता होता है एवं महेश्वर आदि विविध रूपों में भासने वाली एक ही (आत्मा) अलख की झलक मात्र है, यह प्रतिपादन करना इस लेख का प्रमुख ध्येय था। देश काल आदि की अपेक्षा से कहे जाने वाले मैं, तुम, यह तथा वह, इन चारों के मूल में एक ही परमात्मा तत्व है, (अस्ति) विद्वमान है जो इन चारों का प्रकाशक एवं आधार है। उस अलखपुरुषमूर्ति की ही मुझमें (जीवरूप से) तुझमें (त्व) इसमें इंद्ररूप जगत में) उसमें (तत्रूप से) सर्वत्र झलक दिखलाई पड़ती है। मैं, तू यह वह तो परिवर्तनशील है लेकिन है (परमात्मा) नित्य एवं अपरिवर्तनशील है, वह तीनों कालों में एक रस सदा स्थिर रहता है। मैं मेरा, तू, तेरा, यह इसका तथा ''वह'' उसका आधार वहीं आत्मा है वह ''है'' रूप से जब सबके साथ लगा रहता है तो ही उनका अस्तित्व (अस्तिपना) दिखलाई देता है इन सब में तू है, यह है, वह है, ऐसा तो बोला जाता है पर ''मैं है'' ऐसा व्यवहार में नहीं बोला जाता वरन् ''मैं हूँ'' ऐसा कहा जाता है। कारण यह है कि मैं हूँ में ''हूँ'' मैंपन के कारण आ गया है। जब तक मैंपन (अहंकार) है तभी तक ''हूँ'' के रूप में परिछिन्नता या एक देशीयता है। जब मैंपन मिट जाता है तो है (परमात्मा) ही शेष रह जाता है, 'हूँ' (परिछिन्नता) समाप्त हो जाती है–

*जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाय।*
*प्रेम गति अति सांकरी जा में दोइ न समाय॥*

अर्थात् जब तक जीव में (अज्ञान के कारण) मैंपन (शुद्र अहंकार) रहता है तब तक वह है'' तत्व (परमात्मा) से दूर होता है और तत्व विचार (आत्मनिरीक्षण) से जब उसे सत्य का बोध होता है तो उसका यह परिछिन्न भाव समाप्त होकर मात्र 'है' रूप परमात्मा ही शेष रह जाता है, किसी संत ने कहा है–

*पहले तो अपना नामों निशां मिटावै,*
*फिर उसको पूरन, ब्रह्म साफ दिखलावै॥*

"मैं", तुम यह वह, सब मिथ्या हैं। "है" सत्य है। यह, वह, मैं तू प्रकृति के साथ सम्दन्ध से उत्पन्न भाव है तथा "है" (अस्ति) परमात्मा का वाचक है। प्रकृति और उसके सुन्दर दिखाई पड़ने वाले सभी प्राणी पदार्थ, जड़ चेतन संसार नहीं है।

अर्थात झूठे (आभासमात्र) है जो उसी 'है' (परमात्मा) की सत्ता से ही सत्य और सुन्दर भास रहे हैं। बड़े ही आश्चर्य की बात है कि वह "है" तो हमें स्पष्ट दिखाई नहीं देता और 'नहीं' है, सो संसार में सर्वत्र दृष्टिगोचर है। संतं सुन्दर दास ने इस सम्दन्ध में क्या ही सुन्दर बात कही है–

दोहा- *"है" सो सुन्दर है सदा, "नहीं" तो सुन्दर नांहि।*
*"नहीं–सो सुन्दर देखिये, "है" सो दीखै नांहि॥*

अर्थात्–सुन्दरदासजी कहते हैं कि "जो "है" (परमात्मा) वह सदा सत्य, शिव एवं सुन्दर होता है। और नहीं (प्रकृति) सत्य, शिव एवं सुन्दर नहीं होती क्योंकि प्रकृति परिवर्तनशील है, एक रस नहीं, बदलने वाली है। अतः वह सत्य नहीं, "सत्य" नहीं तो "सुन्दर नहीं तो सुन्दर (आनंद प्रद) भी नहीं, और सुन्दर नहीं तो श्रेयष्कर (कल्याणकारी) नहीं अर्थात् 'शिव' भी नहीं वेदान्त की भाषा में हम कहें तो ब्रह्म (है) सत्य है, द्वितीय (प्रकृति) (नास्ति) नहीं है",।

ब्रह्म में अस्तिपन (हैपन) भांति (चिद्रूप) और प्रिय (आनंदरूप) तीन तत्व (स्वरूप) होते हैं, जबकि प्रकृति में यह अस्ति, भांति और प्रिय तत्व नहीं होता। संत सुन्दर दास एक प्रमुख बात यहाँ यह कहते हैं कि हम व्यवहार (संसार) में देख रहे हैं कि प्रकृति अपने बड़े अनोखे, चित्र, विचित्र, आकर्षक रूपों से हमारे सामने (सत्यइव) सत्य जैसी दिखती है अर्थात् जो "नहीं" [अस्तित्वहीन] है और सुन्दर (परिवर्तनशील नश्वर) है, वह हमें सुन्दर एवं सत्य दिखती है और है (परमात्मा) कहीं दिखलाई नहीं दे रहा जब कि वह "है" अस्ति अर्थात् सत्य शिवं सुन्दरम् रूप से चराचर में व्याप्त होकर स्थित है। वह "अलखपुरुषमूर्ति" हमारे गुरुदेव के हृदय में तथा समस्त बाह्य रूपों में समाया हुआ था तभी तो हर दम आप बोला करते–

*"अलख पुरुषमूर्ति".....।*
*"हुजूर गरीवन्निबाज.....॥"*

"अलख" खोल दे-पलक, देख ले, दुनिया की झलक-झलक"। इस संसार में हम तेरे वन्दे सर्वत्र तुझे ढूंढते हैं लेकिन तू पर्दानसी की भाँति इस संसार रूप अपनी त्रिगुणमयी माया के पर्दे की पीछे छुपकर हमें न देख। हम सिर्फ तेरे हैं और तू हमारा तू ही विविध रूपों में सदा सर्वदा हमारी आँखों के सामने है। हम न कोई

साधना जानते हैं न योग क्रिया, बस तेरा नाम अपनी जिह्वा पर रटते रहते हैं, तू हमारे मन मन्तिष्क में समाया हुआ है, अधिक क्या कहें तुम्हें हमारी सब कुछ खबर है–

*"हम तेरे सनम हो चुके, हमारा" तू है।*
*महाराज, तुम्हें है, सरम हमारी जी,*
*हमें नहीं, कुछ उज़र करेंगे तावेदारी जी॥*
*जन्मान जन्म से लगन हमारी तेरी,*
*महाराज, तुमको दमभर न विसारूं जी,*
*तन-मन-धन और प्राण तुझवै न्यौछावर डारूं जी॥*
*श्रवनों से जिक्र हर जगह तेरा सुनता हूँ,*
*महाराज नाम रसना से उचारूं जी।*
*तू नैनों में रहा छाय, चाहे जिस वख्त निहारूं जी॥*
*रहूँ एक पैर से खड़ा मैं हाजिर बन्दा,*
*अब तेरे इश्क का पड़ा गले बिच फन्दा।*
*महाराज, तुम्हें सब खबर हमारी जी,।*
*हमें नहीं कुछ उज करेंगे तावेदारी जी॥*
*तेरा ही जलवा झलक खलक में छाया,*
*महाराज, खता दू बख्शन हारा जी,*
*तूही दिलो दिल्दार हमारा प्रान से प्यारा जी॥*

(तुकन्नगिर/हरिनंद)

"हरिः शरणम्"

*हरिः ॐ तत्सत्। हरिः ॐ तत्सत्॥ हरिः ॐ तत्सत्॥।*

❑❑❑

# अध्याय-12

*॥ ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः॥*

*बाबा मनोहर दास जीवन-दर्शन*

## बाबा के मन भाये छंद

इस अध्याय में उन छंदों को लिखा जा रहा है जो प्रायः हुजूर के श्री मुख से समय-समय पर भाव विभोर होकर निकला करते थे। एक वार हुजुर के दरबार में एक नव युवक योगी आया था, जिसे बाबा ''बड़ी बहू का छोरा'' कहा करते थे, उसने बाबा को अपना गुरुदेव स्वीकार कर लिया था। बावा भी उससे प्रसन्न रहा करते थे, एक दिन आप धूना पर विराजमान थे उसी समय आपने विरजू सेठ को आदेश दिया–''छोरा एक कापी पैन ला''। कापी-कलम लाये गये, हुजूर अपने श्री मुख से छंदों को बोलते गये और बृजलाल सेठ जिन्हें हुजूर ''मन्नू'' कहा करते थे, कापी में लिखते गये। जब लिख लिए गये तो वह कापी हुजूर ने उस साधू को दे दी। बाबा के सत्य लोक प्रस्थान के कई वर्ष बाद वह साधू पुनः वैर आया अब उसका वेश बदला हुआ था उसने सफेद खादी के कुर्ता व पाजामा पहन रखे थे, एक नेता जैसा लग रहा था। पहले वह कुन्दन दास बाबा के पास पहुँचा नमस्कार प्रणाम किया लेकिन कुन्दन दास बाबा ने उसे नहीं पहिचाना क्योंकि एक तो वह बहुत वर्षों बाद आया था और दूसरे उसका रूप बदला हुआ था, पहले अल्पवय में साधु रूप में आया था अपना परिचय देने पर कुन्दन दास बाबा ने उसे ठीक से पहचान लिया। अरे! तू तो सोनी है''। हाँ पहचान गया।

इसके बाद वह बृजलाल सेठ (बिरजू) से मिला तो वह भी नहीं पहिचान सके। उसने अपने बैग से वह कापी जिसमें बाबा ने कुछ छंद लिखाये थे और जिसमें बृजलाल की लिखावट थी निकाल कर उसे दिखलाई तो तुरन्त अपनी लिखावट को पहिचान कर उस घटना की स्मृति हो आई। यह सब लिखने का मेरा तात्पर्य यह है कि अग्रांकित छन्द मैंने उसी कापी से ज्यों की ज्यों उतार कर पाठकों के हितार्थ यहाँ लिख दिये हैं। इन छंदों से साधना में उपयोगी बातों की जानकारी प्राप्त होती है, साथ ही बाबा श्री मनोहर दास जी महाराज के आध्यात्मिक विचारों की झलक भी हमें इन छंदों से मिलती है–

**(1)**

***निरंजन को नमस्कार, नमों गुरुदेव जी को,***
***गनपति औ फजपति, सरस्वती जी को प्रणाम है।***
***साधुअन कूँ दण्डवत हैं, संतों को सत्य नाम,***
***और लोग दुनियाँ के, तिन्हैं राम राम है,***

शोभा कहै, वन्दे को बन्दगी बराबर है।
कलमा के शरीफों को अपना भी सलाम है।
दंगल के लोग सब, सभा बीच हाजिर रहें,
सत्य नाम पैरी पै, हमारी हरि नाम है॥

(2)

पंडित के पिरोहित, पड़ौसी परमारथ के,
बल्लभ के सेवक, चेला चाटे हैं सिद्धन के।
गुनिन के गुलाम हैं, खुशी हैं खूबसूरत के,
आदर के ठौर बीच, रहने वाले हदद् के।
शहर के ग्राहक हैं, कायर से कौन काम,
कहत घनश्याम हम आशिक हैं मर्द के।
भले के भाई हैं, बुरे के जमाई हैं,
दाता के सहाई हैं, वहनोई बेदर्द के॥

(3)

एरे मन मेरे! चल तीरथ करें, किये पातक घनेरे,
तेरा तन भी छूट जायेगा।
चल काशी, अविनाशी ते मिलाय दउ तोय,
चौरासी का फन्दा, तुरत टूट जायेगा।
आवेंगे जमन के दूत, पकड़ ले जांय तोय मजबूत,
लुटत-लूटत एरे बन्दे, तू भी लुट आयेगा।
वहती गंगा, हाथ पग क्यों न पखार लेत,
काचकासा शीशा फटाफट फूट जायेगा।

(4)

दाने की खातिर ऊंच गिनें न नीचन को,
दाने की खातिर सारा जहान् ही मजूर है।
दाना दिखाय बधिक फाँस लेत पँछी को,

दाने की खातिर मर जाना भी मंजूर है॥
दाने की खातिर परदेश गये हीरा–लाल,
दाना और पानी दोनों मिसल मशहूर है,
दाने बिन दिवाना नांय, इस दम का ठिकाना नांय,
जहाँ दाना ले जाये, वहाँ जाना ही जरूर है॥

(5)

मन से महीप के मुंशी मंतग–मोह,
मदन मौहर्रिर की मिशल मतबारी है।
क्रोध कोतवाल लोभ नाजिर की मिल्लत से
ज्ञान मुद्दई की जिन मिशल विगारी है।
अहंकार अहलमद, करत न रिपोर्ट भली,
तृष्णा चपरासी की, दस्तकनित जारी है।
दीन की अपील, अद्यडिगरी न होय, केशव,
अर्जी हमारी, आगे मर्जी तुम्हारी है।

(6)

दीनताई, दया और नम्रताई दुनिया बीच,
बन्दगी से प्यार राखि, भूले को खिलायेगा।
चारबीसीचार से तू बचेगा मेरे यार,
साधुअन की संगत से, तू बड़ा सुख पायेगा।
वेद और पुरान सब, कहते हैं जमान भये,
संकटहु न आवै, जमशहु न पावेगा।
उद्धवजी, विचार देखी, औसर न बार-बार,
बड़ी सरकार का सलुक काम आयेगा॥

(7)

राजन की नीति गई, मित्रण की प्रीति गई,
नारी की प्रतीति गई, यारमन भायौ है।

*शिष्यन् को भाव गयौ, पंचन कौ न्याव गयौ,*
*सत्य को प्रभाव गयौ, झूंठ ही सुहायौ है।*
*मेघन की वृष्टि गई है, भूमि सब नष्ट भई,*
*सकल संसार विस्तार दरसायौ है।*
*कीजिये जो कृपा श्री गोविन्द लाल जी,*
*ऐसा कठिन करात, कलिकाल चढिआयो है॥*

*(8)*

*सरम सरकि गई सरग, धरमधसि गयौ धरन में,*
*पुण्य गये पाताल, पाप छायौ बरन-बरन में।*
*घर-घर भी विप्रीति, गांव के नर और नारी,*
*अब राजा करें अन्याय, जगत में मचि गई रब्बारी।*
*अभैसिहं तू कहाँ गयो, वेताल कहै,*
*विक्रम सुनों, यह कलिकाल प्रकट भयौ॥*

*(9)*

*शशिबिनु सूनी रैन, ज्ञान बिनु हृदय सुनौ।*
*कुल सूना बिन, पुत्र, पात बिनु तरुवर सूनौ॥*
*गज सूनौ बिनु दन्त, हंस बिनु सागर सूनौ।*
*विप्र सून बिन वेद और बन पुहुप विहूनो॥*
*हरिनाम भजन बिन संत और घटा सून बिनुदामिनी।*
*वेताल कहै विक्रम सुनौ, घर सूनौ बिनु कामिनी॥*

*(10)*

*सोरठा– गिरि से गिरिये धाय, मानसरोवर डूबिये।*
*मर जइये विष खाय, मूरख मित्र न कीजिए॥*
*चौपाई– सत्य-सुकृत की फिरै दुहाई।*
*बामनलाख दगा मिटिजाई॥*

ॐ श्री श्री 1008 श्री बाबा मनोहरदास महाराज की जय।

*हरिः ॐ तत्सत्। हरिः ॐ तत्सत्॥ हरिः ॐ तत्सत्॥।*

❑❑❑

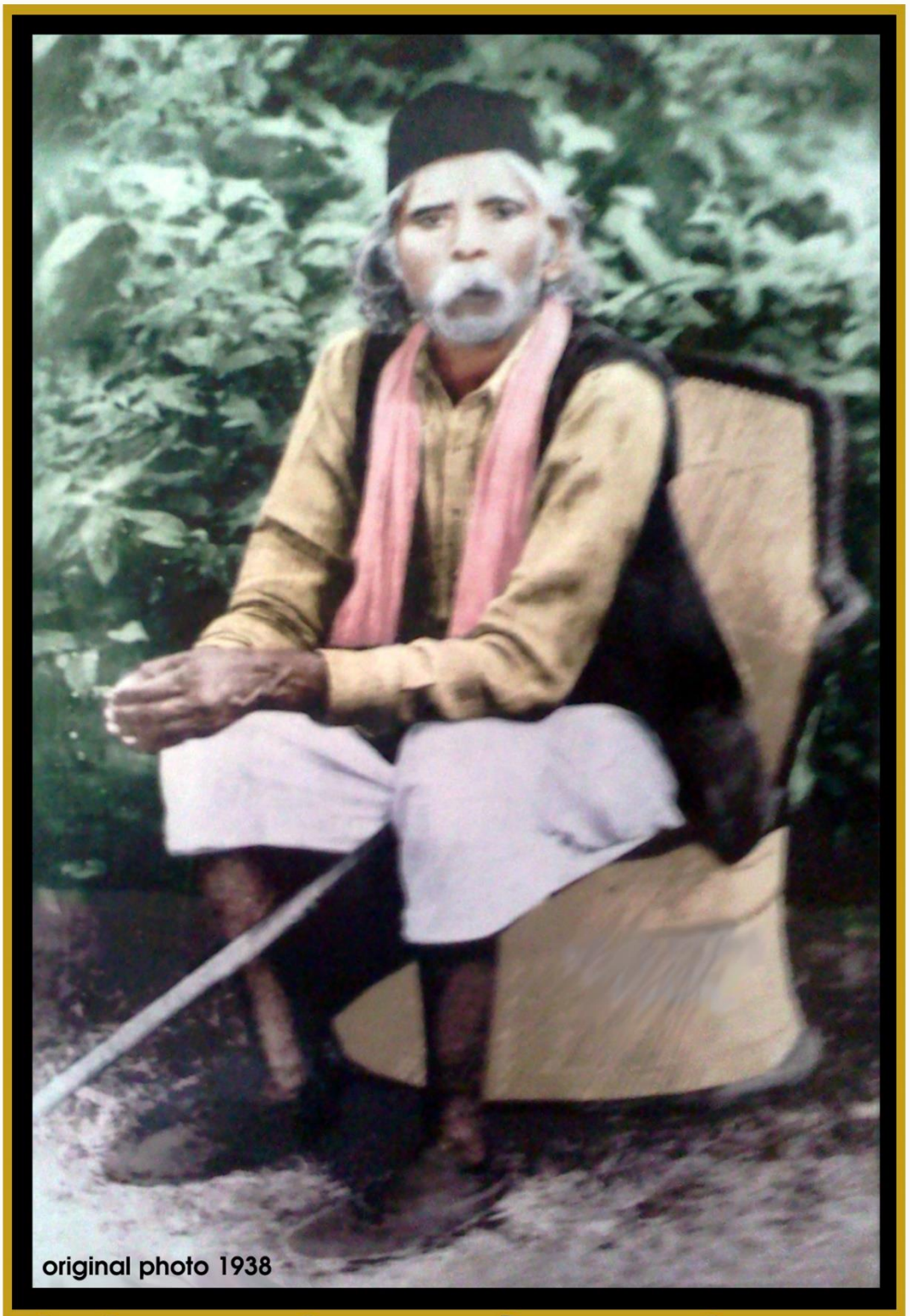


श्री श्री १००८ श्री बाबा मनोहर दास जी महाराज